यदि गांधी शिक्षक होते

[राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों का निबन्ध-संग्रह]

शिक्षा विभाग राजस्थान, के लिए
चिन्मय प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर—३

आमुख

शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर द्वारा प्रति वर्ष शिक्षक दिवस के अवसर पर राजस्थान के सृजनशील शिक्षक-लेखकों की विविध साहित्यिक कृतियों का प्रकाशन किया जाता है। इस योजना के अन्तर्गत अब तक कुल तेरह पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है जिनमें हिन्दी, उर्दू तथा राजस्थानी भाषा की कृतियां सम्मिलित हैं।

इस समय गांधी शताब्दी के उपलक्ष मे विभाग द्वारा दो पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है। जिनमे से एक यह प्रस्तुत पुस्तक है। राष्ट्र-पिता गांधीजी भारत की आत्मा के प्रतीक बन चुके हैं। हम उन्हें पूरी तरह से समझ सकें, उनके विचारों तथा जीवन-कर्म को स्मरण करते हुए अपने आचरण को शुद्ध तथा उन्नत कर सकें इस दृष्टि से ही इन पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है पाठकों को ये पुस्तकें प्रिय तथा उपयोगी प्रतीत होंगी।

संतोष और प्रसन्नता इस बात की है कि राजस्थान के सृजनशील शिक्षक अपने साहित्य-कर्म की ओर पूर्ण सजगता से प्रवृत्त हैं। विभाग का उद्देश्य उन्हें यथासंभव प्रोत्साहन तथा प्रेरणा देना है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के प्रकाशक भी विभाग को अपना हार्दिक सहयोग प्रदान कर रहे हैं। इसके लिए ये प्रकाशक-बन्धु तथा सृजनशील शिक्षकगण दोनों ही साधु-वाद के पात्र हैं।

हरिमोहन माथुर,
निर्देशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर

गांधी शताब्दी
२ अक्तूबर, १९६९

अनुक्रम

बुनियादी शिक्षा : आदर्शवाद के सन्दर्भ में

—जमनालाल बायती

देश को स्वतन्त्र हुए 20–22 वर्ष होने आये पर आज तक देश की शिक्षा प्रणाली, शिक्षा का माध्यम, विभिन्न स्तरो पर शिक्षा का पाठ्य-क्रम, सामान्य शिक्षा मे तकनीकी शिक्षा का स्थान, बुनियादी शिक्षा, क्षा की योग्यता, शिक्षकों की भर्ती, शिक्षक शिक्षा, किस स्तर के किस विषय के पाठ्यक्रम मे क्या-क्या उद्देश्य प्राप्त करने हैं आदि पहलुओ पर देश के शिक्षा-शास्त्री, शैक्षिक नियोजन कर्ता एवं शिक्षा प्रशासक एक मत नहीं हो सके हैं। उच्चस्तर माध्यमिक शिक्षा प्रणाली, तीन वर्षीय स्नातक शिक्षा, बहुप्रयोजनीय पाठशालायें, बुनियादी शिक्षा, विद्यालय सगम तथा कार्यानुभव आदि विभिन्न प्रयोगों मे भी देश पीछे नहीं रहा है। इन प्रयोगों से देश को लाभ हुआ या हानि, ये प्रयोग जनमानस का हृदय जीत सके या नहीं; शोध विद्यार्थी के लिए यह एक रुचिप्रद विषय हो सकता है। इस भांति देश की शिक्षा व्यवस्था निश्चित नही हो पाई है, वह सडक के चौराहे पर खडी है, जिधर की हवा बहे, उधर चल पड़ती है। ऊपर लिखे सभी बिन्दुओं का एक पत्र में विवेचन होना कठिन है, अतः इस प्रस्तुत पत्र में केवल शिक्षा के आदर्शवादी दर्शन के सन्दर्भ मे बुनियादी शिक्षा का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाज के निर्माणक तत्व के रूप में युवा पीढ़ी के लिए शिक्षा के उचित आधारों की कठिनाई अनुभव की जा रही है,

इस पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारें व्यस्त दीख रही है। इसी प्रक्रिया के सन्दर्भ मे बुनियादी शिक्षा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सभी प्रान्तीय सरकारों ने बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के रूप मे स्वीकार किया है। संक्षेप मे, बुनियादी शिक्षा सम्पूर्ण शैक्षिक भवन की आधार शिला है इसी भांति विद्यार्थी जीवन सम्पूर्ण जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। आदर्शवाद के व्यापक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में बुनियादी शिक्षा का मूल्यांकन भी कम महत्व नहीं रखता है। क्योंकि Thomas F. W. and Long A R. के अनुसार इसके बिना—

"शिक्षा शिक्षार्थी को या तो दैनिक कार्यक्रम का यन्त्रवत अनुयायी बनाती है या फिर शिक्षार्थी को प्रयोजनहीन नवीनता का शिकार बनाती है।"

पी० टी० राजू के अनुसार "यदि पूछा जाय कि पश्चिमी जीवन दर्शन की आधार शिला क्या है तो इसका निश्चित रूप से कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता पर भारतीय स्थितियों मे आदर्शवाद की ओर संकेत किया जा सकता है।"

इटली के आदर्शवादी विचारक ग्रेन्यलो के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आध्यात्मिक विकास पर आधारित स्वानुशासन है। एकत्व में अनेकत्व अंशो का समग्र रूप से समायोजन करते हुए अन्ततः स्वयं की प्रकृति से पूरा आभास पाकर इस भावना की लहर में वर्तमान स्थिति सक्रिय एवं निरन्तर नई सूझ-बूझ प्राप्त कर रहा है।

समायोजन करने वाली संस्थाओं मे से शिक्षा एक है जो व्यक्ति के चारों ओर प्राप्त सामाजिक एवं भौतिक वातावरण तथा उसके मस्तिष्क पर विचार करती है। उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यक्ति को सत्य की खोज करने योग्य एवं त्रुटियों मे बचाने योग्य, सुन्दरता का अनुभव करने योग्य, असुन्दरता से ऊपर उठने योग्य, शिव को प्राप्त करने योग्य एवं बुराईयों पर विजय पाने योग्य बनाती है।

शिक्षा शब्द की व्याख्या करते हुए पूज्य बापू ने लिखा था कि "शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास होना चाहिए।" उन्ही के शब्दो मे "शिक्षा से मेरा आशय बालक या मानव के सर्वांगीण शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सर्वाधिक उपयुक्त विकास से है।" बटलर महोदय के अनुसार आदर्शवाद से भी इन्हीं उद्देश्यों का संकेत मिलता है।

अ) मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास :

गांधीजी ने केवल भौतिक लाभ ही दृष्टिगत नहीं रखा है वरन् वे व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर बल देते हैं। उनका विश्वास है कि आध्यात्मिक सफलता के लिए कठोर जीवन एवं निरन्तर परिश्रम आवश्यक है। इसी आशय के विचार भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डा० काल् राम श्रीमाली ने भी अपनी पुस्तक 'वर्धा स्कीम में व्यक्त किये हैं। गांधीजी केवल अक्षर ज्ञान या साक्षरता को ही शिक्षा नहीं मानते। उनके अनुसार वह व्यक्ति जिसने सुन्दर शिक्षा पाई है, निम्न गुणों से युक्त होना चाहिए, उसका बदन उसकी इच्छा के अनुसार आज्ञापालन में दीक्षित हो, प्रसन्नता, सहज एवं सुविधा से सभी काम कर लेता हो, भले बुरे का भेद कर सकता हो, जो प्रखर बुद्धिमान एवं तार्किक व्यक्ति हो, प्रकृति के शाश्वत सत्यों के ज्ञान का भण्डार हो, जो दृढ़ इच्छा शक्ति से कष्टों का सामना कर सकता हो, जो आततायी एवं हिंसात्मक प्रवृत्तियों से घृणा करे, दूसरे के व्यक्तित्व का आदर करे एवं परिवर्तन में विश्वास करे।

हार्न महोदय शिक्षा की व्याख्या करते समय इसी आशय के विचार व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार,शिक्षा एक चिरन्तन प्रक्रिया है जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से विकसित, स्वतन्त्र एवं चेतनायुक्त मानव को ईश्वर के प्रति उच्च अनुकूलन कराती है। जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के बौद्धिक संवेगात्मक एवं संकल्पित वातावरण में होती है।'' इस आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त सही अर्थों में आदर्शवादी सिद्धान्त ही है। जो भी हो, यह कहना कठिन है कि उन्हें कहाँ तक प्राप्त किया जा सका है ?

(आ) प्रकृति एवं मानव के अस्तित्व की मौलिक एकता :

गांधीजी अद्वैत दर्शन के विश्वासी थे इसलिए वे कहा करते थे कि यदि एक व्यक्ति को भी आध्यात्मिक लाभ होता है तो सम्पूर्ण मानव जगत को लाभ होता है। कार्य की सम्पूर्ण ईकाई में एवं समन्वित शिक्षण में इसी पर जोर दिया गया है। यह सार्वलौकिक विचार मस्तिष्क के सम्बन्ध में न्यूनाधिक रूप से स्वीकृति सूचक है। यद्यपि भारतीय दर्शन के अनुसार कहीं भी प्रकृति एवं मनुष्य में विरोध नहीं है। हार्न महोदय के अनुसार मनुष्य सम्पूर्ण (Individual whole) है तथा वह (Individual) बड़े सम्पूर्ण (Larger whole) का अंश मात्र है।

(६) सार्वभौमिक शुल्क रहित अनिवार्य शिक्षा का सिद्धांत :

बुनियादी शिक्षा राष्ट्र के सभी 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों एवं बच्चियों के लिए, बिना जन्म, स्थान, लिंग, वर्ण, धर्म का विचार किये, समर्थन करती है। यहाँ गांधी पेस्टालॉजी के समकक्ष दिखाई पड़ते हैं। श्री पटेल के अनुसार 'शिक्षा सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है।'

(१) बुनियादी शिक्षा का समाज दर्शन :

गाँधीजी ने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह एवं सर्वोदय पर आधारित वर्गहीन समाज की कल्पना की थी। उन्होंने बुनियादी शिक्षा को शान्त सामाजिक क्रान्ति का अमोघ शस्त्र माना है। इसी सम्बन्ध में उन्होंने कहा—'उद्योग-धन्धे के माध्यम से शिक्षा देने की मेरी ग्राम क्रान्ति की योजना ही शान्त सामाजिक क्रान्ति का एक मुख्य अंग होगी जिसके दूरगामी परिणाम होंगे। इससे विभिन्न वर्गों मे स्वस्थ एवं धार्मिक सम्बन्ध स्थापित होंगे। इससे ग्रामों का क्षय रुक सकेगा तथा एक न्याय-संगत नींव पर समाज की स्थापना होगी, जिससे अप्राकृतिक गरीबी व अमीरी के बीच की खाई दूर होगी तथा प्रत्येक व्यक्ति को जीविका एवं स्वतन्त्रता के अधिकार का पूर्ण विश्वास प्राप्त होगा।

(२) बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं आदर्शवाद :

हार्न महोदय के अनुसार पाठ्यक्रम की ठोस नींव आदर्श समाज के व्यक्ति के चारित्रिक गुणों पर आधारित होगी। इसमें अनुभवों, कार्य-कलापों, स्थितियों और अध्ययन वर्गों का चयन होगा। जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्णय के अनुसार आदर्श लक्ष्यों के प्रति सर्वाधिक उपयुक्त योगदान दे सकेगा। उन्हीं के अनुसार सूचना ज्ञान में परिणत होगी, पुस्तकें उपकरण में परिणत होंगी तथा उत्तम विचार आदर्श में परिणत होंगे।

उक्त आदर्शवादियों के चिन्तन पर गाँधीजी ने आग्रह नहीं करके तात्त्विक अध्ययन के उदार पाठ्यक्रम को सराहा है। उनकी सम्मति थी-अब तक हम बच्चों को बिना प्रेरणा दिये तथा बिना उनका उत्साह बढ़ाये सूचना देने मात्र तक ही केन्द्रित थे, पर अब हमे बच्चों को शारीरिक श्रम के द्वारा उपयुक्त तरीके से शिक्षित करने पर ध्यान देना चाहिए। शारीरिक श्रम भी गौण क्रिया के रूप में नहीं बल्कि बौद्धिक प्रशिक्षण के लिए उच्च साधन के रूप में माना जाना चाहिए। उदार शिक्षा के सम्बन्ध मे गांधीजी एवं आदर्शवादी एक मत नहीं है। गांधीजी के अनुसार सीखने के लिए अनुशासन एवं प्रयत्न वांछनीय है। यह भी विचारणीय है कि छात्र उन लक्ष्यों की ओर किस प्रकार

अग्रसर होता है, अध्ययन करता है। अध्यापन के समय तात्कालिक उद्देश्यों को भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। आगे चलकर ऐसी स्थिति आयेगी कि जिससे शिक्षण व ज्ञान के संग्रह में मदद मिलेगी।

गाँधीजी ने उपयोगितावादी सिद्धान्त को बुनियादी शिक्षा से कभी अलग नहीं किया बल्कि उस पर प्रभाव डाला और कहा, 'इस योजना का निर्माण कार्यकर्ताओं के निर्माण के लिए हुआ है जो सभी प्रकार से उपयोगी कार्यों पर नजर रखेंगे जिसमे ससम्मान शारीरिक श्रम भी संयुक्त होगा क्योंकि उसी के आधार पर तो विद्यार्थी योग्य एवं अपने पावों पर खड़ा होना सीखेंगे।

(इ) शिक्षण विधि :

आदर्शवादियों का आग्रह है कि वे किसी एक अध्ययन विधि के अनुयायी नहीं है बल्कि विधि के रचयिता है। वे चाहते हैं कि विद्यार्थी निर्णयों एवं चुनावों की विधि का विरोध करे जबकि बुनियादी शिक्षा अनुभवों पर आग्रह करती है। आदर्शवादियों में भाषणपद्धति लोकप्रिय है जो कि शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षकों की पहल एवं सजगता पर निर्भर है। इसके विपरीत बुनियादी शिक्षा मे भाषण पद्धति के लिए कोई स्थान नहीं है। भौतिक एवं जैविक विद्वानों ने कुछ सीमा तक प्रोजेक्ट विधि की महत्ता स्वीकार की गई है, क्योंकि इन विद्वानों का अध्ययन समस्याओं के प्रस्तुतीकरण से आरम्भ होता है तथा प्रयोगशाला में अनुसन्धान की पद्धति पर चलता है एव बुनियादी शिक्षा अनुभवजन्य ज्ञान पर जोर देती है जिसमें सामाजिक दृष्टि से उपयोगी एवं उत्पादक उद्योग केन्द्रीय धुरी है तथा संयुक्त एवं समन्वित सीखने की स्थितियाँ उत्पन्न की गई हैं। बुनियादी शिक्षा के अनुसार ज्ञान अनुभवों का उप-उत्पादन है तथा उस ज्ञान का उपयोग उपयोगी कार्यों में किया जाता है। बुनियादी शिक्षा में 'ज्ञान-ज्ञान के लिए' सिद्धान्त का कोई उपयोग नहीं है, महत्व नहीं है। आदर्शवादी ठीक इसके विपरीत लगते हैं तथा कहते हैं कि परम्पराओं से चले आये रीति-रिवाजों के अनुसार अनुभव से सीखने का आशय है 'ज्ञान का अनुभव में संयुक्तिकरण नहीं हुआ है।' (Knowledge is not introduced in experience) यह अनुभव महगा तथा खतरे से मुक्त नहीं है। बटलर महोदय भी इसी राय के पोषक हैं।[1] हार्न महोदय भी कहते हैं कि मध्यम स्थितियों में ज्ञान के पूर्व स्वयं ज्ञान की आवश्यकता ठीक है पर गम्भीर आवश्यकताओं के समय प्राप्त ज्ञान का उपयोग ही उत्तम है।[2]

1. Butler, D. T. : Four Philosophies P. 243–243.
2. Horne, H.H. : The new Education p. 84.

(ई) बुनियादी शिक्षा एवं आदर्शवाद में शिक्षक शिक्षार्थी का सम्बन्ध :

आदर्शवादियों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति में शिक्षक केन्द्रस्थ स्थान पर विराजमान है एवं वही शिक्षण प्रक्रिया की कुन्जी है। बच्चों के लिए वही शिक्षण के अवसरों का निर्मित करता है, शैक्षणिक वातावरण प्रस्तुत करता है, शिक्षण सामग्री की व्यवस्था करता है और मुख्यतः शिक्षक की वाणी के माध्यम से शिक्षार्थी ज्ञान प्राप्त करता है। बुनियादी शिक्षा में शिक्षक बालक के पिता के समान माना गया है तथा वही शिक्षार्थी के लिए मार्ग दर्शक है जो बालक को उसकी शैक्षणिक समस्याओं को हल करने में मदद करता है। बुनियादी शिक्षा के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया में केन्द्रीय धुरी शिक्षक नहीं है वरन् यह प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों शारीरिक स्वस्थता, ज्ञान की वृद्धि एवं आध्यात्मिक विकास के लिए संलग्न है। शिक्षक को पिता के समान सेतरूपी प्रयोग शाला में प्रयोग रत विद्यार्थी के साथ स्नेह युक्त व्यवहार करना चाहिए। मैत्रीपूर्ण वातावरण तैयार करने में शिक्षक का पूर्ण हाथ रहता है। शिक्षार्थी के अनुभवों एवं दृष्टिकोणों पर शिक्षक दृष्टि रखता है। गांधीजी ने कहा था कि यदि मुझे बच्चों का वास्तविक शिक्षक एव संरक्षक बनना है तो मेरा व्यवहार बच्चो का हृदय छूने वाला होना चाहिए।

(उ) बुनियादी शिक्षा एवं आदर्शवाद के अनुसार अनुशासन .

आदर्श वादियों के अनुसार अनुशासन के तीन स्तर है : (अ) रुचि (आ) प्रयत्न तथा (इ) अनुशासन। प्रयोजनवादी कहते हैं कि रुचि उत्पन्न कीजिये और बिना बाहरी प्रयत्नो के स्वानुशासन स्थापित हो जायगा। पर व्यवहार में देखा जाता हैं कि हर वस्तु रुचिप्रद नहीं हुआ करती। इसलिए बच्चे को सिखना चाहिए कि किस प्रकार इच्छा शक्ति का विकास किया जाता है जिससे कि रुचि एवं प्रयत्नों का सृजन हो। इस प्रकार अनुशासन इच्छा एवं प्रयत्नों का संयुक्त रूप है। यह स्वशिक्षा का एक स्वरूप है तथा इस प्रक्रिया मे शिक्षक का व्यक्तित्व बहुत बड़ा स्थान रखता है।

गाधी जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिए तथा चरित्र के लिए अच्छा स्वानुशासित जीवन आवश्यक है। 20 नवम्बर 1927 को कोलम्बो मे जाहिरा कॉलेज के छात्रों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि 'इस विशाल कॉलेज मे जो शिक्षा-दीक्षा आप प्राप्त कर रहे है, निरर्थक है, अर्थहीन है। इस शिक्षा प्रणाली की नींव चरित्र निमाण पर

नहीं है।[1] गांधीजी ने स्वानुशासित जीवन के लिए सादगी एवं कठोर परिश्रम आवश्यक माना है। उन्होंने अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया है तथा वे शारीरिक दण्ड का बड़ा विरोध करते हैं। उनके अनुसार सही माने में शिक्षक को बालक का हृदय छूना चाहिए। गांधीजी दमन के लिए कभी नहीं कहते थे। उनकी राय के अनुसार 'यह न करो' ऐसा कभी नहीं कहना चाहिए। वे प्यार सहानुभूति एवं तर्क के द्वारा नैतिकता का पाठ पढ़ाना चाहते थे न कि डर के द्वारा जिसमें बीसों बुराइयां घुसी हुई हैं। इस प्रकार लगता है कि गांधीजी जहां तक अनुशासन की समस्या तथा उसके सुधार का प्रश्न है आदर्शवादियों के बहुत निकट हैं।

(ऊ) बुनियादी एवं आदर्शवादी शाला संगठन :

आदर्शवादी शाश्वत मूल्यों में विश्वास करते हैं। शिक्षक सभी बच्चों के विकास के लिए समान रूप से सजग है। वह अपने शिष्यों को कहने की अपेक्षा सचेत करता है क्योंकि वह जानता है कि प्रत्येक बच्चे के विकास की कितनी सम्भावनायें विद्यमान हैं। वह भूली हुई बातों के लिए याद दिलाता है। इस भांति प्लेटो के अनुसार आदर्शवादी इन्द्रिय ज्ञान के विपरीत तार्किक ज्ञान को प्रधानता देते है। अर्थ के आधार पर सिद्धान्त जो सही व स्थायी हैं ग्रहण किये जाते है। इन्द्रिय ज्ञान अस्थायी है क्षणिक है जो कभी भी समाप्त हो सकता है। प्लेटो व कांट के अनुयायियों के अनुसार बालक का मस्तिष्क केवल धान्तिपूर्वक चुपचाप सुनने वाला या ग्रहण करने वाला ही नहीं है वरन् क्रिया से संलग्न रह कर ज्ञान ग्रहण करने वाला है। वह शिक्षक जो बच्चे के दिमाग में ज्ञान घुसेड़ता है, कांट व प्लेटो के सम्प्रदाय का शिक्षक नहीं है। यद्यपि व्यक्ति उद्देश्य माना जाना चाहिए न कि किसी दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति का साधन मात्र। पर कांट के अनुसार व्यक्ति से ऊपर कर्तव्य को स्थान दिया गया है। इस प्रकार कर्तव्य का विचार हमें तर्क का रास्ता बताता है जो ज्ञान को आधार दिला है।

अन्य आदर्शवादी सम्प्रदाय के अनुसार सभी सम्भव विकास व अध्ययन के क्षेत्र परस्पर सम्बन्धित हैं जिनमें विश्व सभ्यता, संस्कृति व व्यक्तित्व मुख्य है। अधिकांश आदर्शवादी आग्रह करते हैं कि-जैसा कि बुनियादी शिक्षा में माना गया है-प्रत्यक्ष अनुभव से शिक्षा नहीं दी जा सकती जहाँ कि शिक्षा जीवन के ५ क्षेत्रों पर निर्भर है : i. दैनिक यथवत परिचर्या ii. स्वस्थ जीवन

1. Mahatma Gandhi : To the Students. P. 124.

दिये हैं। बच्चों में कठोर परिश्रम, श्रम की महत्ता एवं सादापन की वृद्धि उत्पन्न करने में भी शिक्षक समुदाय असफल रहा है। न तो विद्यार्थी पढ़ना चाहते हैं और न ही शिक्षक पढ़ाना; न तो विद्यार्थी ही श्रद्धालु है और न ही शिक्षकों को अपने व्यावसायिक विराम की चाह। बुनियादी शिक्षा के प्रणेता ही अपने बच्चों को बुनियादी शालाओं में विद्याध्ययन हेतु नहीं भेजना चाहते हैं। यदि आज सूर्य के प्रकाश में दिन में भी हाथ में दीपक लेकर गांधीजी द्वारा कल्पित बुनियादी पाठशाला ढूढे तो शायद न मिल सकेगी। भारत में बुनियादी शिक्षा के जनक डा. जाकिर हुसैन तो बुनियादी शिक्षा के लिए कुछ भी कहने को तैयार नहीं थे। वे अपनी पुत्री को असफल कैसे बताते? पर भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री छागला के शब्दों में यह प्रयोग शत प्रतिशत रूप से असफल हो गया है। जीवन स्तर में सुधार भी राष्ट्रीय शिक्षा के लक्ष्यों में से एक (महत्वाकांक्षी?) स्वीकार किया है। योजनाओं में तीव्र औद्योगीकरण पर बल दिया गया है। शिक्षा में चरित्र निर्माण व आत्मिक विकास पर कोई बल नहीं दिया गया है। यह केवल सरकारी नौकरी प्राप्त करने हेतु प्रमाण पत्र दिलाती है जिसने ग्रामीणों को एक बहुत बड़ी संख्या को अपनी ओर आकर्षित किया है। फलतः शिक्षा में सिवाय इस दर्शन के कि 'खाओ पिओ और मौज उड़ाओ' कुछ नहीं दिखाई पड़ता। यहां चार्वाक दर्शन बहुत निकट आ जाता है। आज मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का मतलब लेते हैं-'पाठशाला के पाठ्यक्रम में अधिक से अधिक विषय, शाला के दैनिक कार्यक्रम में अधिक से अधिक प्रवृत्तियां तथा शाला में शिक्षण के लिए अधिक से अधिक समय।' इसका परिणाम यह हुआ कि बालक पुस्तकों के भार से लद गए हैं तथा शिक्षा का स्तर दिनोदिन गिरता चला जा रहा है। परिवार एवं समुदाय का योगदान बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में प्राय. लोप सा हो गया है और इस प्रकार बच्चों पर (पैत्रिक धरोहर के रूप में) संस्कृति का भी प्रभाव नहीं दीखता है।

साधारणतः समाज दर्शन उत्सवों एवं त्यौहारों पर प्रकाश में आता है। व्यक्तियों ने साथ रहना सीखा है पर नैतिक संबंध नहीं पनप पाये हैं। अब भी धनियों एवं निर्धनों के बीच बहुत बड़ी खाई है तथा सामाजिक न्याय स्वप्न हो गया है।

गांधीजी उन आदर्शों के लिए जीये और मरे, जिनकी उन्होंने शिक्षा दी और आज का मानव समाज उन से बहुत कम सीख पाया, आज बुनियादी शिक्षा जहां तहां कठिनाई से दीख पड़ती है, शाश्वत मूल्य भुलाये जा चुके हैं तथा भौतिक एवं यान्त्रिक मूल्यों ने सम्पूर्ण ध्यान आकर्षित कर लिया है। यह है गांधीजी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा की वर्तमान स्थिति।

गांधी और भारतीय शिक्षा

—धर्मचन्द्र शर्मा

जब अपोलो के अंतरिक्ष यात्रियों ने चन्द्रमा के नजदीक पहुंच कर पृथ्वी की ओर देखा तो यह उन्हें 'आकाश के विशाल मरुस्थल में एक मरुद्यान' के समान प्रतीत हुई। उन्होंने भूमण्डल की जनता की शांति व समृद्धि के लिए परमात्मा से प्रार्थना भी की। सारे अंतरिक्ष में उन यात्रियों को धरतीमाता ही अति 'सुन्दर व हरी भरी' दृष्टिगोचर हुई। उसकी ओर उन्हें विशेष आकर्षण महसूस हुआ और वे भूलोक पर पुनः वापिस आने के लिए लालायित हो उठे।

गीता में भी इसी प्रकार का एक प्रसंग आता है। अर्जुन ने भी भगवान श्रीकृष्ण का विराट् दर्शन करने की कामना की थी। परन्तु विराट रूप से जब सचमुच साक्षात्कार हुआ तो उसने व्याकुलता का अनुभव किया और जनार्दन से प्रार्थना की कि वे मानुष रूप में, अपने सौम्य रूप में, दर्शन देकर उसके हृदय को शांति प्रदान करें।[१] करीब-करीब वही हाल इन तीन अन्तरिक्ष यात्रियों का हुआ। चन्द्रलोक से पृथ्वी पर आने में उन्हें असीम आनंद प्राप्त हुआ। लाखों मील ऊपर से उन्हें यह वसुधा बहुत ही छोटी प्रतीत हो रही थी। बस, एक छोटे कुटुम्ब के रहने लायक। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने भी विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में ही माना था, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उनका आदर्श था यद्यपि उनके साधन वर्तमान यानों की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक थे।

वर्तमान युग में इस भावना का अधिकतम प्रसार हो, विश्व के प्राणी विश्व-बंधुत्व की भावना ग्रहण करें। संसार को बचाने के लिए यह आवश्यक

है यह सर्वनाश के कगार पर है विशेष तौर पर जब कि विश्व विज्ञान एवं उन्नत तकनीक के कारण दिनों दिन छोटा होता जा रहा है। गांधीवाद के प्रमुख प्रवक्ता श्री रंगनाथ दिवाकर के शब्दों में

'Thanks to science technology, and rapidly developing means of communication the realistion of oneness of humanity and life itself need not any longer be the monopoly of only saints and men gifted with spiritual meditation. 13

बापू ने कई बार कहा था – 'The world is my family' – 'विश्व मेरा परिवार है' उनकी शुरू से ही अन्तर्राष्ट्रीय वृत्ति थी। वे सभी राष्ट्रों के लोगों को अपना भाई समझते थे। उनके दिल में किसी प्रकार का भेदभाव नही था। वे मानव के साथ मानवता का व्यवहार रखते थे। यह मानवता की भावना ही पारिवारिक भावना का मूल मंत्र है, सत्य है, निचोड़ है। उनके सामने राष्ट्र, रंग, धर्म, भाषा आदि के भेद गायब हो जाते थे। वे इन सब प्रकार के भेदों से ऊपर उठकर मूल साम्य की दृष्टि रखकर मनुष्य जाति से स्नेह करते थे।

विज्ञान के चमत्कार के फलस्वरूप चन्द्रलोक पर संभवतः जल्द ही अमरीका के कुछ यात्री उतर सके और वहां अपनी कालोनी बनाने में समर्थ हों। पर अन्त मे उससे दुनिया को क्या लाभ होगा ? शायद वैज्ञानिकों में स्पर्धा की भावना जाग्रत हो, तनाव, आपसी शक शुबहा एवं विश्व की महान शक्तियो मे संघर्ष की पृष्ठभूमि उत्पन्न हो इसी को दृष्टि मे रखकर राष्ट्रपति निक्सन ने कहा था कि हम चन्द्रमा की ओर तो दौड लगा रहे हैं वहां पहुंच जाने मे सफल भी हो जावेंगे। किन्तु पृथ्वी पर हम गम्भीर कशमकश के शिकार बन रहे हैं उनके शब्दों में—

'Our destiny lies not in the stars, but here on Earth itself, in our own hands and our own hearts.'

हमारा भविष्य सितारों पर नहीं, किन्तु जमीन पर निर्भर है, वह हमारे हाथों व हमारे दिलों में छिपा हुआ है, हमें पृथ्वी के भविष्य की ओर गम्भीरता से सोचना चाहिए। विश्वबन्धुत्व अथवा वसुधैव-कुटुम्बकम् की भावना के जाग्रत होने पर ही विश्व का कल्याण संभव है। अन्यथा अणु उद्जन बमों के विस्फोटों के बीच पृथ्वी का नामोनिशान न रहेगा। परन्तु यह तभी संभव है जबकि विज्ञान के साथ अहिंसा एवं प्रेम को जोड़ा जाय, तो

संसार में सर्वोदय की शक्तियों को बल मिलेगा अगर विज्ञान और हिंसा का मेल हुआ तो सर्वनाश निश्चित है व आइन्स्टीन की भविष्यवाणी के सही होने में फिर कोई कसर न रहेगी।

वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना को जाग्रत करने की प्रक्रिया भौगोलिक नही है वह मानसिक है व पूर्णरूप से भावात्मक है अगर हमारा दिल साफ व दिमाग की दृष्टि व्यापक है, हम उदार है व दूसरों के दृष्टिकोण से भी सोच सकते हैं तो दुनिया में शांति व प्रेम की लहर व्याप्त हो जायगी। राष्ट्रसंघ के चार्टर में कहा गया है कि युद्ध मानव के मस्तिष्क मे पैदा होता है मनुष्य का मन ही सघर्ष की जड़ है इसी प्रकार विश्वबन्धुत्व भी इन्सान के दिल और दिमाग द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए हमे एक नए आदमी का निर्माण करना होगा। बुनियाद से ही प्रारम्भ करना होगा। यह कार्य कठिन है महाकवि गालिब के शब्दो में—

बस कि दुश्वार है हर काम का आसा होना
आदमी को भी मयस्सर नही इन्सा होना।

इन्सान बनना और इन्सान बनाना कठिन अवश्य है पर असभव नही है इसी ओर प्रयत्न किए जाने पर मन्जिल दूर नही। संसार मे 20 वी शती में भी पारस्परिक विद्वेष, सकुचित एवं सकीर्ण मान्यता व विचारधाराए पनप रही हैं इंग्लेंड मे कैथोलिक व प्रोस्टेस्टेंट सम्प्रदायों के बीच झगड़ों में कई व्यक्ति मारे गए। यहा तक कि शांति स्थापित करने के लिए आयरलेंड के कुछ मार्गों में सेना बुलाई गई। यरुशलम स्थित पवित्र धार्मिक मस्जिद अलअक्सा (जिसका स्थान मक्का व मदीना की मस्जिदो के साथ है) मे ईश्वर के मदाध (विक्षिप्त मद ?) बदे ने आग लगा दी, लखनऊ मे मुस्लिम सम्प्रदाय के दो वर्गों में झगड़ा हो गया। दक्षिण अफ्रीका मे काले एव गोरो का भेदभाव यथावत् चल रहा है। विज्ञान एव संस्कृति मे बढ़े चढ़े देश अमेरिका मे डा. मार्टिन लूथर किंग (जो शांति पद यात्रा का नेतृत्व कर रहे थे) को मेम्फिस नगर मे हिंसा की गोलियों का शिकार होना पड़ा, इतना ही नहीं उस देश के सर्वोच्च व्यक्ति राष्ट्रपति केनेडी को भी गोलिया सहन करनी पड़ी। शांति के पुजारी प्रेम अहिंसा के एक हिन्दू युवक द्वारा गाधी पर गोलिया चलाई। मुर्तरूप ईसामसीह को सूली पर चढ़ाया गया व इसी शताब्दी मे महात्मा गाधी की एक हत्या पर पादरी ने विह्वल होकर कहा 'ईसा को आज दूसरी बार सूली दी गई' रेडियो पर इस दुखद समाचार को सुनकर एक अंग्रेज बालिका ने कहा था कि "पापा कितना अच्छा होता अगर पिस्तौल का आविष्कार ही नहीं

हुआ होता" कितनी गहन वेदना छिपी है इन शब्दों में एक शायर ने यही कहा "आज दो मुर्दे अमर हुए – इनमें से एक भी कब पुनः उदय होगा, लेकिन दूसरा शताब्दियों के बाद यदि मानवजाति का भाग्य हुआ तो" इसी बात को गीता में भी लिया गया है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

प्राचीन धर्म युद्धों (Holy Crusades) में असंख्य युद्ध हुए एवं इसाई इस्लाम हुए और धर्म के आधार पर ही भारतवर्ष का विभाजन किया गया जिसके फलस्वरूप प्राचीन काल से साथ रहने वाले हिन्दू एवं मुसलमानों के दिलों में अन्तर आ गया। अतः परिस्थिति जन्य घटनाओं एवं उनके मूल कारणों को दृष्टि में रखकर हमें पृथ्वी पर इस प्रकार का अहिंसा-प्रेम, मानवता के प्रति स्नेह का ऐसा वातावरण का निर्माण करना है कि सभी कुटुम्ब भावना से ओत प्रोत हो संसार में शान्तिपूर्ण वातावरण हो अपनी भेदभाव किसी भी आधार देश, जाति, धर्म रंग, लिंग, आदि पर न हो महाकवि इकबाल के शब्दों में यह मूल मान्यता रखकर आगे बढ़ना है कि

'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना'

बल्कि एक कदम और आगे रखकर नकारात्मक दृष्टि छोड़कर सर्वधर्म समन्वय के साधक : विनोबा के साथ यह कहें तो ज्यादा युक्तियुक्त होगा।

'मजहब हमें सिखाता आपस में प्यार करना'

क्योंकि सिर्फ बैर मत करना, इतना ही काफी नहीं है, प्यार भी करना चाहिए। सब पर प्यार करने के वास्ते मजहब निकला है विनोबा इसी गति में आगे बढ़ते हैं 'मेरा काम दिलों को जोड़ना है।'

आज संसार मे अनेक धर्म, मत, मतान्तर फैले हुए हैं संसार में उनके अनुयायी यत्र तत्र बिखरे हुए हैं एशिया मुख्य धर्मों का आदि स्थान रहा है। ईसामसीह (येरुसलम) मोहम्मद साहब (अरब) बुद्ध (भारत) महावीर (भारत) शिंतो (जापान) कन्फ्यूसियस (चीन) गुरु नानक सिंह (भारत) के अनुयायी प्रायः विश्व के प्रत्येक बड़े नगर मे पाए जाते हैं – बौद्ध, जैन, सिख धर्म मूलतः भारत के सनातन धर्म के ही अंग हैं।

भारत में विभिन्न धर्मावलम्बियों का प्रतिशत अनुपात निम्न रूप से है। यह संख्या 1961 की जन गणना के अनुसार दी गई है।

धर्मानुसार जनसंख्या[7]

क्रम	धर्म का नाम	जनसंख्या में उनका प्रतिशत
1.	हिंदु	83.51
2.	मुस्लिम	10.69
3.	इसाई	2.44
4	सिख	1 75
5.	जैन	0.46
6.	बौद्ध	0.74
7.	अन्य जन जाति	0.37
8.	जोरोस्ट्रियन	0 04

ऐसे विशाल जनशक्ति के देश भारत में यदि धर्म को आपस मे जोडने वाली कडी के रूप में काम मे न लिया गया तो भारतवासियो में बिखराव की मनोवृत्ति को अधिक बल मिलेगा। आज की परिस्थितियां इस बात का तकाजा कर रही है कि मानव सब एक है ये बाहरी भेदभाव भुला दिए जाने चाहिऐ। साथ ही सब को मिलकर इस पृथ्वी को अधिक सुन्दर, प्रेमपूर्ण एवं रहने योग्य स्थान बनाना है जहा मानवता का आदर्श स्थापित हो। ससार को इस प्रकार के सर्व धर्म समभाव, भ्रातृत्व, प्रेम एवं अहिंसा का सदेश एव आदर्श सपन्न आध्यात्मिक परम्पराओं वाले देश भारत को ही प्रस्तुत करना है। यहा पर तो जैसा गांधीजी ने लुई फिशर से कहा था :[8]

"I am a Christian, and a Hindu and a Muslim and a Jew." लुई फिशर की टिप्पणी के अनुसार "Gandhi was unquestionably a Hindu but he could at the same time be a Muslim or a Christian. This is the crux of Gandhi's religion and it is nothing if it is not a universal religion.

गांधीजी के इसी आदर्श के अनुसार चलने मे ही न केवल भारत का बल्कि विश्व का कल्याण निहित है। गांधीजी का जीवन ही इसकी प्रेरणा देता है।

Mahatma Gandhi's life is his philosophy. Never in history has there been a man who so devoutly lived a life in tune with his philosophy as Gandhiji. True Jesus Christ, Gautama Budha, Zoroaster, Muhammed and other
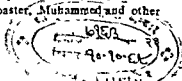
हुआ होता" कितनी गहन वेदना छिपी है इन शब्दों में एक र
कहा "आज दो सूर्य अस्त हुए – इनमें से एक तो कल पुनः उदय
दूसरा शताब्दियों के बाद यदि मानवजाति का भाग्य हुआ तो"

ाप चलना होगा जो कि यद्यपि जन्म से हिंदू थे पर तत्काल उस वस्तु को तोड़ने के लिए तत्पर थे जो तर्क एवं नैतिकता के प्रतिकूल हो। इसी भावना ा विकास एवं पोषण हमें शिक्षाव्यवस्था द्वारा करना है।

Believing as I do in the influence of heredity eing born in a Hindu family I have remained a Hindu. should reject it if I found it inconsistent with my moral ense or my spiritual growth.

कार्ल मार्क्स (कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो) जबकि हिंसापूर्ण साधनों पर श्वास प्रकट करता है और यही चाहता है कि सत्ताधारी कम्यूनिस्टों का ाम सुनकर कांपें; इससे प्रोलितैरियत आम जनता को कोई हानि नहीं होगी । केवल बंधन मुक्त होंगे। समस्त विश्व पर उन्हें विजय प्राप्त करनी है। समस्त देशों के कामगारों !! संगठित हो जाओ !!! सम्भवतः तत्कालीन यूरोप की परिस्थितियों के कारण मार्क्स जैसे विचारशील प्रान्तदर्शी ने तीव्र उद्वेगों के वशीभूत होकर ये उद्गार प्रकट किए हैं। पूंजीवादी व्यवस्था का निम्नतम घृणित रूप उसके सामने आया, लाचार था वह भी परिस्थितियों से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्वों से; मार्क्स अपने को उनसे अलग कर वस्तुनिष्ठ चिंतन न कर सका। रोमन न्याय के आदर्श, खून के बदले खून, दांत के बदले दांत, आंख के बदले आंख उसके सामने थे, तब इस उद्घोष के अलावा और क्या मार्क्स से अपेक्षा की जा सकती थी। जहाँ पर शासन, न्याय, बदला चाहता है जहाँ पर यही आदर्श रूप माना जाता है वहाँ यद्यपि भौतिक प्रगति होगी पर मानसिक द्वन्द्वों से परिपूर्ण। इसके विपरीत गांधीजी के शब्दों में To meet evil by evil is a law of animal world. Every violent action has its violent reaction. Nature is red in tooth and claw. But what about men who are not merely animals but rational *animals* ? To *meet* evil by *good* is the prerogative of men alone. The scriptures declare that good conquers evil in the long run. The Vedas, the Gita, the Bible, Buddhism, Jainism and the religion of Confucius preach the gospel of good and urge men to face evil by it. सभी धर्म अततः सत् की विजय की घोषणा करते हैं अतः मनुष्य के लिए यही उचित है कि वह पशुवत् व्यवहार न करे मनुष्योचित व्यवहार करें। वेदों उपनिषदों से वैष्णव धर्म के चैतन्य महाप्रभु तक सदाग्रह पर जोर देते रहे। भगवान बुद्ध ने समत्व भाव से कष्ट सहन किया, बोधि

relegious leaders led their lives according to their teachings but all of them were of the religious or spiritual plane. On a mundane plane it is Gandhiji and Gandhiji alone whose action and thought were always in consonance with each other, Gandhiji a man of earth sought to make this earth joyous and peaceful ...The greatest feature of Gandhiji's greatness is the integrity of idea and life ..... Every idea of his was observed, experimented and assimilated by his life.

म० गांधी का जीवन दर्शन गीता के 'स्थित प्रज्ञ[10] पुरुष की भांति' 'सर्वकाम संकल्प वर्जिता'[11] त्यक्त सर्व परिग्रह[12] नित्यतृप्तो निराश्रय[13] कर्मफला संगः[14] त्यागकर द्वन्द्वातीत[15] होकर संयतेन्द्रिय[16] रह कर जीवन्मुक्त जीवन का मूर्त रूप है। गांधीजी के सुख दुःख में समान भाव को देखकर[17] व सिद्धि असिद्धि[18] लाभ हानि जय व पराजय को समान समझ कर[19] कर्म में नियोजित प्रवृत्ति निष्काम कर्मयोग[20] का साक्षात् प्रमाण है अतः कर्मेन्द्रियों से अनासक्त भाव से जो कर्मयोग के आदर्श का प्रमाण गांधीजी ने प्रस्तुत किया वही श्रेयस्कर है। आज भारत में व अन्यत्र जो द्वैध भाव पाया जाता है उसका मन वचन व कर्म में एक रूपता लाने करने से ही निराकरण हो सकता है। मनुष्य ने बहुत विकास किया है अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के साथ, चेतन मन से वह सोचकर अच्छे व बुरे कार्य के संबंध में निर्णय कर अन्याय के पथ पर चलने से इंकार कर सकता है और उस मार्ग को ग्रहण कर सकता है जो निश्रेयस की ओर लेजाने वाले हैं अब वह अदृश्य शक्ति के हाथ का खिलौना नहीं रहा। शेक्सपीयर की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार अभिनेता वह जरूर है पर वह अब अपना कार्य बुद्धिमत्ता, वीरता एवं स्पष्टता के साथ कर विकास की अगली स्थिति पर पहुंच सकता है[21] यद्यपि यह सही है कि

No doubt religion has to answer some of the most terrible Crimes in history. But that is the fault not of religion but of the ungovernable brute in man. He has not (yet) shed the effects of his brute ancestry.

भगवान महावीर गौतम बुद्ध

इसके लिए हमे नानक कबीर, स्वामी दयानंद की परंपरा को पोषित कर विकसित करने के प्रयत्नों मे महात्मा गाधी के जीवन दर्शन के साथ

साथ चलना होगा जो कि यद्यपि जन्म से हिंदू थे पर तत्काल उस वस्तु को छोड़ने के लिए तत्पर थे जो तर्क एवं नैतिकता के प्रतिकूल हो। इसी भावना का विकास एवं पोषण हमें शिक्षाव्यवस्था द्वारा करना है।

Believing as I do in the influence of heredity being born in a Hindu family I have remained a Hindu. I should reject it if I found it inconsistent with my moral sense or my spiritual growth

कार्ल मार्क्स (कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो) जबकि हिंसापूर्ण साधनों पर विश्वास प्रकट करता है और यही चाहता है कि सत्ताधारी कम्यूनिस्टों का नाम सुनकर कांपे; इससे पोनितेरियन आम जनता को कोई हानि नहीं होगी वे केवल बंधन मुक्त होंगे। समस्त विश्व पर उन्हें विजय प्राप्त करनी है। समस्त देशों के कामगारो !! संगठित हो जाओ !!! सम्भवतः तत्कालीन यूरोप की परिस्थितिओं [illegible] जैसे विचारशील क्रान्तदर्शी ने तीव्र उद्गारों के [illegible] है। पूंजीवादी व्यवस्था का निम्नतम [illegible] वह भी परिस्थितियों से उत्पन्न [illegible]। कर वस्तुनिष्ठ चिंतन न कर [illegible] हाथ के बदले हाथ आंख के

relegious leaders led their lives according to their teachings but all of them were of the religious or spiritual plane. On a mundane plane it is Gandhiji and Gandhiji alone whose action and thought were always in consonance with each other, Gandhiji a man of earth sought to make this earth joyous and peaceful ...The greatest feature of Gandhiji's greatness is the integrity of idea and life ....Every idea of his was observed, experimented and assimilated by his life.

म० गांधी का जीवन दर्शन गीता के 'स्थित प्रज्ञ[10] पुरुष की भांति' 'सर्वकाय संकल्प वर्जिता'[11] त्यक्त सर्व परिग्रह[12] नित्यतृप्तो निराश्रय[13] कर्मफल्या संगड[14] त्यागकर द्वन्द्वातीत[15] होकर संयतेन्द्रिय[16] रह कर जीवन्मुक्त जीवन का मूर्त रूप है। गांधीजी के सुख दुख में समान भाव को देखकर[17] व सिद्धि असिद्धि[18] लाभ हानि जय व पराजय को समान समझ कर[19] कर्म मे नियोजित प्रवृत्ति निष्काम कर्मयोग[20] का साक्षात् प्रमाण है अतः कर्मेन्द्रियों से अनासक्त भाव से जो कर्मयोग के आदर्श का प्रमाण गांधीजी ने प्रस्तुत किया वही श्रेयस्कर है। आज भारत मे व अन्यत्र जो द्वैध भाव पाया जाता है उसका मन वचन व कर्म में एक रूपता लाने करने से ही निराकरण हो सकता है। मनुष्य ने बहुत विकास किया है अन्तर्मुखी प्रवृति के साथ, चेतन मन से वह सोचकर अच्छे व बुरे कार्य के संबंध में निर्णय कर अन्याय के पथ पर चलने से इंकार कर सकता है और उस मार्ग को ग्रहण कर सकता है जो निश्रेयस की ओर लेजाने वाले हैं अब वह अदृश्य शक्ति के हाथ का खिलौना नही रहा। शेक्सपीयर की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार अभिनेता वह जरूर है पर वह अब अपना कार्य बुद्धिमत्ता, वीरता एव दृढ़ता के साथ कर विकास की अगली स्थिति पर पहुंच सकता है[21] यद्यपि यह सही है कि

No doubt religion has to answer some of the most terrible Crimes in history. But that is the fault not of religion but of the ungovernable brute in man. He has not (yet) shed the effects of his brute ancestry.

भगवान महावीर गौतम बुद्ध

इसके लिए हमें नानक कबीर, स्वामी दयानंद की परंपरा को पोषित कर विकसित करने के प्रयत्नों मे महात्मा गाधी के जीवन दर्शन के साथ

साथ चलना होगा जो कि यद्यपि जन्म से हिंदू थे पर तत्काल उस वस्तु को छोड़ने के लिए तत्पर थे जो तर्क एवं नैतिकता के प्रतिकूल हो। इसी भावना का विकास एवं पोषण हमें शिक्षाव्यवस्था द्वारा करना है।

Believing as I do in the influence of heredity being *born in a Hindu family I have remained* a Hindu. I should reject it if I found it inconsistent with my moral sense or my spiritual growth.

कार्ल मार्क्स (कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो) जबकि हिंसापूर्ण साधनों पर विश्वास प्रकट करता है और यही चाहता है कि सत्ताधारी कम्यूनिस्टों का नाम सुनकर कांपे; इससे पोलितेरियत आम जनता को कोई हानि नहीं होगी वे केवल बंधन मुक्त होंगे। समस्त विश्व पर उन्हें विजय प्राप्त करनी है! समस्त देशों के कामगारों !! संगठित हो जाओ !!! सम्भवतः तत्कालीन यूरोप की परिस्थितियों के कारण मार्क्स जैसे विचारशील क्रान्तदर्शी ने तीव्र उद्वेगों के वशीभूत होकर ये उद्गार प्रकट किए हैं। *पूंजीवादी व्यवस्था का निम्नतम* घृणित रूप उसके सामने आया, लाचार था वह भी परिस्थितियों से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्वों से; मार्क्स अपने को उनसे अलग कर वस्तुनिष्ठ चिंतन न कर सका। रोमन न्याय के आदर्श, खून के बदले खून, दांत के बदले दांत, आंख के बदले आंख उसके सामने थे, तब इस उद्घोष के अलावा और क्या मार्क्स से अपेक्षा की जा सकती थी। जहाँ पर शासन, न्याय, बदला चाहता है जहाँ पर यही आदर्श रूप माना जाता है वहां यद्यपि भौतिक प्रगति होगी पर मानसिक द्वन्द्वों से परिपूर्ण। इसके विपरीत गांधीजी के शब्दों मे To meet evil by evil is a law of animal world. Every *violent action has its violent reaction.* Nature is red in tooth and claw. But what about men who are not merely animals but rational animals ? To meet evil by good is the prerogative of men alone. The scriptures declare that good conquers evil in the long run. The Vedas, the Gita, the Bible, Buddhism, Jainism and the religion of Confucius preach the gospel of good and urge men to face evil by it. सभी धर्म अंततः सत् की विजय की घोषणा करते हैं अतः मनुष्य के लिए यही उचित है कि वह पशुवत् व्यवहार न करे मनुष्योचित व्यवहार करें। वेदों उपनिषदों से वैष्णव धर्म के चैतन्य महाप्रभु तक सदाग्रह पर जोर देते रहे। भगवान बुद्ध ने समत्व भाव से कष्ट सहन किया, बोधि

वृक्ष के नीचे बैठ कर मारविजय प्राप्त की। जैनियों के अनुसार जिस मनुष्य में सम्यक्त्व का भाव है वह हमेशा बुरे कार्य से दूर रहता है, कष्ट एवं दुःख नही पहुँचाता। प्रेम व सत्कर्म से बुराई का सामना करते हैं कन्फ्यूशियस (चीन का सोफिस्ट दार्शनिक) ने वास्तविक मानवीय संबंधों को अपने नैतिक दर्शन का आधार माना। ईसाई धर्म पूर्वी परम्पराओं के अधिक समीप है जब कि वहाँ भी हम सच्चे प्रेम से हिंसक व्यक्ति को जीत लेने की बात सुनते हैं। महान पोप लिओ हिंसक भीड को अकेले ही वशीभूत करने मे समर्थ होगए। जार्ज फोक्स (क्वकर सम्प्रदाय के जन्मदाता) ने नगी तलवार लिए मनुष्य को विजित कर अपना शिष्य बना लिया। जैकाब बाहम सेंट फ्रांसिस, कबीर, रामकृष्ण, टाल्सटाय व गाधीजी इसी परम्परा के सत है जिन्होने प्रेम सद्भावना की साधना से मानव जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया बुराई चारो ओर है। भय, काम, ईर्ष्या, लोभ, मोह आदि पर नैतिक गुण ही विजय प्राप्त कर सकते हैं। अहिंसा, नैतिक साहस, प्रेम व मानव भावना का विकास ही संसार को प्रेम व शांति से परिपूर्ण कर सकते हैं। ईसामसीह का अमर सदेश-शिखर पर दिया गया उपदेश "Evil was not to be repelled by evil but by good., in other words, physical force was to be opposed not by its like but by soul force. [30] ने महात्मा गाधी पर अमिट प्रभाव डाला डरबन (दक्षिणी अफ्रीका) में गोरों की भीड के आक्रमण से एक यूरोपीय महिला ने उन्हें बचाया पर उन्होंने प्रतिकार स्वरूप भीड पर कोई कार्यवाही नही की। जनरल स्मट्स के बनाए कानून के अनुसार प्रत्येक भारतीय का पजीकरण कराना अनिवार्य था। १० फरवरी को जैसे ही वे रजिस्ट्रेशन आफिस जा रहे थे कि एक भारतीय पठान मीर आलम ने उन पर आक्रमण किया। तत्काल वे गिर पड़े और उन्हें कोई होश नही रहा। मि. डॉक के सान्त्वना प्रदर्शन पर उन्होंने पहले मीर आलम के बारे मे पूछा, उत्तर मे बताया गया कि उसे अन्य व्यक्तियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया है। तत्काल गांधी जी ने यह इच्छा प्रकट की कि उसे रिहा कर दिया जाना चाहिए।

भारतवर्ष मे जहाँ गांधीजी ने जीवन ग्रहण किया, बुद्ध एवं महावीर अहिंसा एवं प्रेम को धर्मों को पुनरुज्जीवित कर जिसके अनुसार अपना संपूर्ण जीवन का निर्माण किया उस देश मे जहाँ करोडों लोगों ने गांधी जी को सुना है, समझाने की चेष्टा की है उनके प्रेरक सान्निध्य मे रहे हैं उनसे पत्र व्यवहार किया है। अपना दिक् लोकतंत्र प्रक्रियाओं को प्रस्तुत कर देश के अनुसार समाधान प्राप्त कर अपना जीवन प्रशस्त किया है उन सब का यह पुनीत दायित्व है कि आगामी शताब्दी वर्ष में गांधी जी के आदर्शों, परिकल्पनाओं के अनुसार नवीन

धर्म समान हैं। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (पृ. ५६२) के Though we have no state religion we cannot forget that a deeply religious strain has run throughout our history like a Golden thread. यदि इस मूल्यवान मणि को हमने काँच का टुकड़ा समझ लिया तो कल्याण की अपेक्षा करना अनुचित होगा। शिक्षा शास्त्रियों के मत से It is through religion that the feet of youth can be set on the road to the absolute values. Truth, Beauty and Goodness. (Ross) सत्यं शिवं सुन्दरं के इस आदर्श की परिकल्पना अभारतीय नहीं है पवित्र जीवन एव आदर्श विचारों के प्रोत्साहन एवं अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने के लिए मानव जीवन में धर्म का समावेश आवश्यक है। मानव जीवन का उद्देश्य अंतिम सत्य की उपलब्धि है। जीवन की सफलता धर्म पर निर्भर है गांधीजी के शब्दों में 'Life without religion, I hold, is life without principle·······is like a ship without a rudder....and a man without this religious backing without that hard grasp of religion, be also tossed about on this stormy ocean of the world, without over reaching his destined goal.

धर्म का स्वरूप – धर्म का स्वरूप स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में निस्वार्थ भावना है (The unselfishness is the test of religion) महात्मा गांधी के विचारों के अनुसार सत्य, प्रेम व न्याय प्राप्ति का अथक प्रयत्न करना ही धर्म है। उपनिषदों मे सत्य को सर्वोच्च माना गया है, (सत्यं ज्ञानम् अनन्त ब्रह्म) ईश्वर सत्याधिपति सत्य नारायण है उनके विचारानुसार वेद, कुरान, बाइबिल में आत्मानुशासन के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रतिपादित किया गया है। गाधीजी के कथनानुसार 'To me religion means Truth and Ahimsa.' और इसी का युवकों के जीवन में अधिकतम समावेश होना वांछनीय है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से सत्य एवं अहिंसा का आचरण करेगा उसी प्रकार गाधीजी के अनुसार विभिन्न धर्म एक निश्चित स्थान पर पहुंचने के विभिन्न मार्ग हैं उनके विचार के अनुसार 'संसार में उतने ही धर्म है जितने व्यक्ति हैं। एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट किया गया है। 'Even as a tree has single trunk, but many branches and leaves, so there is one true and perfect Religion but it becomes many, as it passes through the human medium 32 (Mahatma Gandhi : From Yeravda Mandir, P 55).

महात्मा गांधी के अनुसार यदि भारत को आध्यात्मिक दिवालियापन से बचाना है तो देश के युवकों को धार्मिक शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। पर साथ ही यह भी ध्यान में रखना उचित होगा कि धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन, वाचन धार्मिक शिक्षा का पर्याय नहीं है। बालकों को धार्मिक पाठ्यक्रम में अन्य प्रमुख धर्मों के मुख्य सिद्धांतों के बारे में ज्ञान दिया जाना चाहिए। This study of other religions besides one's own will give one a grasp of the rock bottom unity of all religions and afford a glimpse also of the universal and absolute truth which lies beyond the dust of creeds and faith 33. यह शंका रखना कि दूसरों के धर्मों के अध्ययन से किसी व्यक्ति का मन अपने धर्म से डिग सकता है निर्मूल है। हिन्दू दर्शन के अनुसार सभी धर्मों में सत्यता है और यह आशा की गई है कि हिन्दू प्रत्येक अन्य धर्म को आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखेगा। पर यह अध्ययन अन्य धर्मों के मुख्य प्रसिद्ध अनुयायियों के द्वारा प्रस्तुत किए गए विवरणों पर ही आधारित होना चाहिए।

पाठ्यक्रम में उक्त के अतिरिक्त सभी धर्मों की मूल बातों का अध्ययन का प्रावधान हो। विद्यार्थी उत्सुकता से पढ़ें, समझें इनसे उनका विकास होगा। आध्यात्मिक शांति प्राप्त होगी और अपने धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ेगी। धार्मिक शिक्षा के प्रति कई पूर्ण आश्वस्त नहीं हैं इसके लिए महात्मा गांधी का यही विचार था कि विद्यालयों में एक बार सही धार्मिक वातावरण बनने पर धार्मिक शिक्षा के सभी दोष तिरोहित हो जायेंगे। पर इस भय से धार्मिक शिक्षा ही न दी जाय यह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

To give up religious instruction is like letting a field lie fallow and grow weeds for want of the tiller's knowledge of the proper use of the field.

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री रूसो एवं फ्रोबेल का यहां उल्लेख आ जाता है। फ्रोबेल रूसो से इसी दिशा में आगे बढ़ जाता है कि उसके मतानुसार शिक्षक का कार्य एक माली का कार्य है। जिस प्रकार एक उद्यान को माली साज संवार कर सुन्दर पुष्पों को उगाता है अनावश्यक घास एवं खरपतवार दूर कर काट छांटकर झाड़ियों एवं पौधों को यथास्थान सुरुचिपूर्ण ढंग से उगने में सहायता देता है वैसे ही एक कुशल अध्यापक बालक की मनोभूमि से अनावश्यक बातों को निकालकर उत्तम विचारों के बीज बोकर यह प्रतीक्षा करता है कि उद्यान

में सुन्दरतम गुणों का विकास हो। उनके शिष्यों के भावों एवं विचारों की सुगन्धि चहुँ ओर फैले।

अध्यापक समाज पर जब यह दायित्व आता है तो गांधीजी के विचार से धार्मिक शिक्षा के लिए सबसे उत्तम निम्न तरीका है।

The best way to do this is for the teachers to rigorously practice these virtues in their own persons. Their very association with the boys will then give a fine training in these fundamental virtues.' अध्यापकों में द्वैध भाव न हो मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं तीनों क्षेत्रों मे एक रूपता होने पर ही अध्यापक धार्मिक शिक्षा देने की अर्हता प्राप्त करेंगे। सादा जीवन उच्चविचार ही ऐसे शिक्षकों का जीवन ध्येय हो। धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत किसी भी धर्म के बाहरी क्रियाकर्म, आडम्बर आदि का पोषण एवं अन्य ऐसी बातों का समावेश नहीं किया जाना चाहिए जो अंधविश्वासों को बढ़ावा देता हो। संपूर्ण विद्यालय मे प्रधानाध्यापक से लेकर सेवक तक इस वातावरण का निर्माण करें। सबसे सरल तरीका सामूहिक प्रार्थना से प्रारम्भ करना है। छात्रों के साथ शांतिपूर्ण वातावरण में, समान भाव से प्रार्थना करें शनैः शनैः प्रार्थना के फलस्वरूप असीम शांति उन्हें प्राप्त होगी और उनको ईश्वर की सर्वव्यापक शक्ति का, उसकी सहायता का स्वतः अनुभव होगा। जीवन में द्वैध भाव समाप्त होकर एकरूपता आयगी और एक नए समाज का उदय होगा। सच्चे धर्म के दर्शन मनुष्यों को स्नेह, सेवा, त्याग, सत्य मे मिलेंगे। इन गुणों का विकास सरलता से किशोरावस्था के बालकों मे किया जा सकता है। जबकि वह संसार में एक युवक के रूप में प्रवेश करता है उसमे हिम्मत है व जोश है।

इतिहास से सिद्ध है कि सभी धर्म-प्रवर्तकों का उद्देश्य आपस मे प्रेम, सचाई आदि मानवीय गुणों का विकास एवं प्रसार करना है। अब समय आगया है कि इस पवित्र कार्य को, जो अब तक सब अलग-अलग क्षेत्रों में कर रहे थे, मिलकर सम्पन्न किया जाय। विश्व शांति के लिए एक संगठित प्रयत्न किया जाय इसके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ की भांति संयुक्त धर्म संघ की स्थापना हो और विश्व में सचाई, प्रेम, सहानुभूति, शांति के प्रसार के कार्यक्रमों को विशाल पैमाने पर किया जाय ताकि द्वेषभाव व युद्ध की विभीषिकाएं समाप्त

हो। यहां पर भारत के चतुर्थ राष्ट्रपति श्री वी. वी. गिरि के भाषण को ध्यान में रक्खा जाय जो उन्होंने पद ग्रहण करते समय दिया था—

Secularism is not a negative concept but an active one working for promotion of respect for every religion. It is based essentially on humanism.

धर्म निरपेक्षता एक नकारात्मक धारणा नहीं है परन्तु यह प्रत्येक धर्म के लिए आदर भावना रखने का सक्रिय भाव है। यह मूल रूप से मानवता पर आधारित है।

भारतीय शिक्षा जगत् में महात्मा गांधी

—बजरंग सहाय शास्त्री

डा० राधाकृष्णन ने कहा है—"धरती पर आदमी की कहानी का सबसे बड़ा तथ्य उसकी पार्थिव प्राप्तियां नहीं हैं। जो साम्राज्य उसने बनाए और मिटाए वे महत्वपूर्ण नहीं हैं। महत्वपूर्ण तो है उसके आत्मा का सत्य और शिव की खोज करते हुए युगानुयुग विकास। जो आत्मा की विकासोन्मुख यात्रा में संलग्न रहते हैं, वे मानव संस्कृति के इतिहास में अमर स्थान पा जाते हैं। समय ने वीरों की गाथाओं को उतनी ही आसानी से तुच्छ बना दिया है जितनी आसानी से वह साधारण लोगों को भूला है। किन्तु संतों की सत्ता अक्षुण्ण रही है।"

विश्व कल्याण के लिए प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील धर्मभूमि-भारत ने एक ऐसे ही महान् संत को जन्म दिया था, जो संसार को विनाशकारी खड्डों से मुक्त करने का संकल्प लेकर प्रस्तुत हुआ। वह महात्मा गांधी थे। अपने सुदृढ़ और पवित्र कर में 'प्रेम' से आप्लावित सत्य, अहिंसा का महाज्योति दीप जलाए भयानक अंधकार की युगों से जमी चली आ रही पर्तों में मानवता का दीप ढूंढने चले। उन्हें सफलता मिली। विश्व इतिहास के पृष्ठ उनके प्रेरक, श्रेष्ठ कार्यों की स्वर्णिम लिखावट से रंग गए।

जिस समय गांधी का आविर्भाव हुआ, हमारा देश गुलाम था। परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े भारतीयों को एक नई रोशनी ने अपनी ओर

आकर्षित किया। यह एक साधारण प्रकाश नहीं, अखंड ज्योति थी। देश में एक अलौकिक शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। महात्माजी के नेतृत्व में सदियों की गुलामी का अंत हुआ। हम सब खुश हुए। महात्माजी की बुलन्द जयकार के साथ ऐतिहासिक लाल किले पर तिरंगा ध्वज फहराने लगा।

गांधीजी युग पुरुष थे। उनका व्यक्तित्व महान् था। सत्य, अहिंसा प्रेम उनके मूल सिद्धांत थे जिन्होंने उनका मार्ग हर दिशा में प्रशस्त किया। वे उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ थे किन्तु उनकी राजनीति में हिंसा और अन्य दुर्भावनाओं को प्रश्रय नहीं था। 'अहिंसा परमो धर्म' का आश्रय लेकर उन्होंने जो 'सत्याग्रह' का कदम आगे बढ़ाया अंग्रेजों को उसके सामने झुकना पड़ा। देश में स्वराज्य की स्थापना हुई। गांधीजी का राजनैतिक कार्यक्षेत्र सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं था। दक्षिण अफ्रीका व नेटाल में प्रवासी भारतीयों की दयनीय दशा के विरुद्ध उन्होंने आंदोलन उठाया। उन्हें मानवोचित अधिकार दिलाने में बड़े से बड़े संघर्ष का भी मुकाबला किया। मानव मात्र के हित के लिए उन्होंने कितने कष्ट झेले, कितनी यन्त्रणायें सहीं; किंतु अपना आगे बढ़ाया हुआ कदम पीछे हटाना उन्होंने न सीखा। क्योंकि महात्मा गांधी एक कर्मठ योगी थे।

महात्माजी क्रांतिकारी थे। वे रचनात्मक, व्यावहारिक कार्यों में क्रांति चाहते थे। वे प्रत्येक पुरानी, रूढ़िवादी परम्परा को नवागत राह देना चाहते थे। तथापि आध्यात्मिक मूल्यों में उनका दृढ़ विश्वास था। उन्होंने कहा है कि सच्चे दिल से ईश्वर की आराधना करना एक अमूल्य निधि है। उन्होंने सत्य को ही ईश्वर का स्वरूप माना है। सत्य उनका आराध्य था। प्रेम उनका आधार था और अहिंसा उनका मार्ग।

गांधीजी जनता के सच्चे प्रतिनिधि थे। उनके उद्‌गार जनता के उद्‌गार थे। उनकी उपलब्धियाँ उनकी व्यक्तिगत ही नहीं, बल्कि मानव जाति की उपलब्धियाँ हैं।

शैक्षणिक संसार में भी गांधीजी का योगदान कुछ कम नहीं रहा है। उन्होंने वर्तमान भारतीय शिक्षा पद्धति को दोषपूर्ण बताया है। हमारी शिक्षा पद्धति पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। शिक्षा का उद्देश्य होता है—'व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन में उसकी सफलता।' किन्तु आज जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली का हमारे देश में व्यापक प्रसार है, वह एकदम अव्यावहारिक है। जीवन की वास्तविक शिक्षा से कोसों परे है। महज पाठ्य पुस्तकें रटकर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना ही शिक्षोपार्जन की इति नहीं

है। इसका क्षेत्र विस्तृत है। महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि उसमें जीवन की सही और व्यावहारिक शिक्षा दी जा सके।

आज देश में बेरोजगारी चरम सीमा पर है। देश के तरुण नागरिक बी. ए. और एम. ए. की डिग्रियां ले लेकर नौकरी के लिए दर-दर भटकते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद वे नहीं जानते कि हमें क्या करना है। इस सबके मूल में निहित है हमारी शिक्षा की अव्यावहारिकता।

यदि बालकों को प्रारम्भ से ही कताई, बुनाई आदि की शिक्षा दी जाय, श्रमदान के कार्यों में उनकी रुचि उत्पन्न की जाय तो इस प्रकार वे श्रमजीवी और स्वावलम्बी बन सकते हैं। इस प्रकार गांधीजी ने एक नई शिक्षा-व्यवस्था जिसे बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) कहते हैं, की नींव डाली। इसके अनुसार जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कपास से रुई निकालकर उसे तकली द्वारा कातने की, गलीचे, दरी आदि बनाने की, बागवानी आदि की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। किन्तु इस प्रकार का प्रबन्ध अभी कुछ ही प्रान्तों में हो पाया है। यदि गांधीजी के शिक्षा सम्बन्धी बुनियादी सुझावों को पूर्णतः क्रियात्मक रूप देकर उसे उच्च स्तरीय शिक्षा तक पहुंचाया जा सके तो शिक्षा जगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है।

महात्मा गांधी के अनुसार हमारी शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय भावना से शून्य है। पाश्चात्य शिक्षा ने भारत की ग्रामीण भोली जनता और किंचित् अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों में एक गहरी खाई पैदा कर दी है। जिसने हमारे समाज का सन्तुलन बिगड़ गया है। पढ़ लिखकर 'बाबू' बने ये लोग अनपढ़ लोगों को चूसने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें गुमराह करने की चेष्टा करते हैं। न उन्हें राष्ट्रीय आदर्शों की परवाह है, न ही उन्हें देश के हितों का ख्याल रह गया है।

इसी सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण बात है कि प्रत्येक देश में, समाज में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा (प्रान्तीय भाषा) अथवा राष्ट्र भाषा होता है। किन्तु अफसोस कि हमारी शिक्षा का माध्यम आंग्ल-भाषा है। एक गैर, विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षाप्राप्त करना, विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त असुविधाजनक रहता है। गांधीजी चाहते थे कि देश में शिक्षा का माध्यम प्रांतीय भाषाएं अथवा राष्ट्रभाषा हिन्दी होना चाहिए। इससे भारतीय शिक्षा संसार को एक सुलभ राह मिल सकेगी।

भारत स्वतंत्र हुआ। भारतीय जनता को राहत मिली। गांधीजी ने चाहा कि देश हर दिशा में समृद्ध हो। देश का प्रत्येक नागरिक शिक्षित

और सम्पन्न हो। अंग्रेजी जमाने में शिक्षा महंगी थी। गरीब बच्चों के नसीब में शिक्षा नहीं थी। वे सब यूं ही, नंगधड़गे आवारा घूमा करते थे। गांधीजी ने यह सब देखा। उन्हें बड़ा तरस आया। सरकार ने गांधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी सुझावों को मान्य किया। चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों की निःशुल्क शिक्षा का बन्दोबस्त करने का निश्चय किया है। निर्धन और योग्य छात्रों को उच्चशिक्षा प्राप्त करने हेतु छात्रवृत्तियाँ देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

इस प्रकार सारे देश में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ। बड़ी संख्या में स्कूल और कालेज खोले गए। किन्तु शैक्षणिक संसार के पाश्चात्य-प्रभाव-पूर्ण संस्कारों में आमूलचूल परिवर्तन न हो सका। यद्यपि आज योग्य विद्यार्थियों के लिए शिक्षा के सभी द्वार खुले हैं। किन्तु इन्जीनियरिंग, डाक्टरी आदि शिक्षाएं अब भी इतनी महंगी हैं कि गरीब व्यक्ति उनका खर्च बर्दाश्त करने में असमर्थ रहता है। अर्थाभाव के कारण प्रतिभा का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है।

गांधी जी के शब्दों में शिक्षा का मूल उद्देश्य है 'व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास'। एक शिक्षित व्यक्ति सच्चरित्र होना चाहिए। उसके दिल में अज्ञान और दुराचार की भावनाओं को कोई स्थान नहीं होना चाहिए। सत्य, अहिंसा, प्रेम के पवित्र सिद्धान्तों ने महात्मा गांधी को ही महान् नहीं बना दिया। दुनिया का कोई भी व्यक्ति महान् सिद्धान्तों. आदर्शों के आधार पर महान् बन सकता है। इसीलिए बच्चों को प्रारम्भ से ही नैतिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

उन्हें सदाचार और दृढ़ नैतिक मूल्यों की भित्ति पर खड़ा कर देश में रामराज्य की कल्पना साकार की जा सकेगी। देश की प्रत्येक शाला, उनका प्रत्येक विद्यार्थी आदर्श होगा। देश की बागडोर भविष्य में उन्हीं नन्हें विद्यार्थियों के हाथमें आने वाली है, जो आज छोटे २ विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उन्हें सिखाना चाहिए कि झूठ बोलना, चोरी करना आदि बहुत बुरी बातें हैं। इनसे उन्हें बचना चाहिए। जहां तक हो, गरीबों की सहायता करनी चाहिए। श्रम से जी नहीं चुराना चाहिए। इस प्रकार की नैतिक प्रेरणाओं से उनके अपरिपक्व दिमाग पर अच्छा असर पड़ सकेगा। उनके भावी जीवन की नींव आदर्श और सुदृढ़ होगी। सारे देश में ऐक्य और भ्रातृत्व भावना उत्पन्न होगी।

गांधी जी स्वयं एक आदर्श अध्यापक भी थे। अपने आश्रम में उन्होंने एक आदर्श विद्यालय की प्रतिस्थापना की। उसमें शिक्षकों के योग्य समूह को

एकत्र किया। स्वयं भी अपनी इस प्रतिभा को मुखरित करने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। वे स्वयं उस शाला का संचालन और निरीक्षण करते थे। विद्यार्थियों को ग्रामोद्योगी शिक्षा, कृषि, बागवानी आदि की समुचित रूप से शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त शारीरिक श्रम, व्यायाम आदि का नियमित श्रम चलता था। उन्होंने नितान्त व्यवहारिक एवं ग्राह्य शिक्षा को स्वयं क्रियात्मक रूप देने का प्रयास किया।

गांधीजी की बुनियादी शिक्षा प्रणाली भारतीय शिक्षा जगत् के लिए अमृत संजीवनी है यदि देश के तथाकथित शिक्षा शास्त्री इस ओर विशेष ध्यान दें।

हम भारतीय हैं। हमारे महात्माजी पर हमें नाज है। एक उच्चकोटि के महात्मा पर जिसने हमारे लिए हंसते २ मुश्किलो का सामना किया। गोलियों की बौछारें सही। आज उनका प्रतिबिम्ब हमारे दिलों में है। उनके उपदेश उनके कार्य हमारे जीवन पथ पर रोशनी फैलाने में समर्थ हैं। बशर्ते कि देश के हर इन्सान को गांधी बनने की हविस हो।

नव सांस्कृतिक जागरण के अग्र-पुरुष गांधी

—होतीलाल शर्मा 'पौर्णेय'

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक पहुंचते-पहुंचते भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। इस परिवर्तन को हम अपने नैतिक पतन की संज्ञा तक दे डालें तो अत्युक्ति न होगी। हमारे सामाजिक मूल्यों तथा सांस्कृतिक जीवन का विशाल भवन ढह कर खण्डहर मात्र रह गया था और हम उन खण्डहरों पर खड़े होकर अपने गौरवमय अतीत के प्रति हास्य का अभिनय करने लगे थे। मैकाले द्वारा प्रतिपादित अंग्रेजी शिक्षा के प्रवाह में बहकर शिक्षित वर्ग नाम मात्र का भारतीय रह गया था। विदेशी शासन के चाबुक से कृषक एवं मजदूर वर्ग की रीढ़ टूट चुकी थी। कृष्ण, गौतम और महावीर के उपदेश इतिहास के पन्नों तक ही सीमित रह गये थे। हमारे पूर्व पुरुषों द्वारा प्रतिपादित सांस्कृतिक मूल्यों का, जिन्हें उन्होंने बड़े यत्न से संजोकर भावी पीढ़ी के लिये विरासत में दिया था, हम ही उपहास करने लगे थे। निरन्तर राजनैतिक संघर्षों एवं विदेशी शासन भार की अतिशयता से भारत का भाग्याकाश तिमिराच्छन्न हो गया था। 'बुभुक्षितं किं न करोति पापं' के अनुसार भारतवासी सभी प्रकार के पतन के मार्ग में आ गये थे। देश की दरिद्रता स्वयं ही देश को अधः पतन की ओर घसीट रही थी।[1]

1. केशवकुमार ठाकुर—'भारत में अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष' पृष्ठ सं. 605।

भारतीय सांस्कृतिक जीवन की इस दुरवस्था में महात्मा गांधी का आविर्भाव हुआ। [illegible] कुरीतियों के [illegible] कारण इस प्रकार जकड़ गया कि [illegible] जीवन में [illegible] होने लगे थे [illegible] देश की राष्ट्रीय चेतना के आगे [illegible] को परिवर्तित किया और गांधी के [illegible] जिन्होंने [illegible] समस्याओं पर [illegible] देश की जीवनशक्ति और [illegible] के नेतृत्व को [illegible] विश्व के महान नेताओं में अपनी [illegible] विशाल जन समूह का नेतृत्व किया। [illegible] पर [illegible] जनता [illegible] में बहुत हुये हैं और होंगे [illegible] चरित्र एवं नैतिक शक्ति से [illegible] जन समूह का अपार अनुराग [illegible] करने वाले ऐसा महात्मा गांधी जैसे विरले ही हुये हैं।

महात्मा गांधी भारतीय सांस्कृतिक चेतना के प्रबल पोषक थे। उन्होंने भारत के सांस्कृतिक मूल्यों को पहचाना था। वे भारत को राजनैतिक रूप से ही नहीं भावात्मक एवं सांस्कृतिक रूप से भी एक बनाना चाहते थे। यही कारण था कि उनका जन्म पश्चिमी भारत में होते हुये भी उनका कार्य क्षेत्र भारत के प्रत्येक भाग में रहा। आदि कवि वाल्मीकि ने राम के स्वरूप-निर्धारण में भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता को सहज में ही व्यक्त कर दिया है। "समुद्र इव गाम्भीर्यम् स्थैर्यम् हिमवानिव" अर्थात् राम में समुद्र के समान गम्भीरता तथा हिमालय के समान स्थिरता है। इस उक्ति में उत्तर में हिमाद्रि से दक्षिण में हिन्द महासागर तक भारतीय एकता का सहज निरूपण कर दिया गया है। महात्मा गांधी ने इस तथ्य को समझा था और उस पर आचरण किया था। उन्होंने लोक संस्कृति की नाड़ी को परखा था व उसके दोषों को दूर किया था। प्रतीकों की तड़क भड़क ने हमारे मन के संस्कारों पर एक धूमिल आवरण डाल दिया था। आत्म-बोध के अभाव में यह आवरण हमें सज्जापूर्ण प्रतीत होता था। उसकी सम्मोहकता के समक्ष हम आत्म-समर्पण कर चुके थे। गांधी जी ने हमें आत्म-बोध कराया और उस आवरण को उतार फेंकने के लिये हमें प्रेरित किया। आनन्द-भवन जैसे प्रमुख स्थानों पर जब विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई तो उन लपटों की चमक में हमें 'स्वदेशी' का महत्व दिखाई दिया।

---

1. रसूल अहमद 'अबोध' – "गांधीजी की समग्र दृष्टि"

नीति के निर्देशक सिद्धान्तों को आचरण में स्थापित करना ही नेता के व्यक्तित्व की विशेषता होती है। महात्मा गाँधी ने जो कुछ कहा उसे जीवन में ढाला। ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, अस्तेय, अपरिग्रह, अहिंसा तथा विश्व-प्रेम आदि मानवीय गुणों के उपदेश के साथ-साथ ही उन्होंने इन्हें अपने जीवन में व्यवहृत किया। बुद्ध, महावीर, ईसा और मोहम्मद साहब के आदर्शों को आचरण के माध्यम से ही उन्होंने जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। धार्मिक सिद्धान्तों पर उनकी अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि रहती थी। इन सिद्धान्तों की वे सरल से सरल व व्यावहारिक जीवन में ठीक उतरने वाली व्याख्या करते थे। हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि स्व० श्री रामनरेश त्रिपाठी ने जब गान्धीजी को गोस्वामी तुलसीदास का यह दोहा सुनाया –

'तुलसीराम सनेह करु, त्यागि सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नव, नव के लिखे पहार॥"

तो जैसी सुन्दर व्याख्या गाँधीजी ने इस दोहे की की थी वैसी न तो सम्भवतः गोस्वामी जी के मस्तिष्क में रही होगी और न त्रिपाठी जी के मन में ही थी। उस व्याख्या को सुनकर त्रिपाठी जी गद्गद् हो उठे थे। व्याख्या इस प्रकार थी –

"मान लो नौ एक आदमी है। अठारह वर्ष का होने पर उसने अपने स्वभाव के गुणों और दोषों को अलग-अलग करके देखा तो उसमें गुण एक व अवगुण आठ थे। उसने अवगुणों को कम करने का प्रयास प्रारम्भ किया। सत्ताईस तक पहुँचते-पहुँचते उसने एक अवगुण हटा लिया और एक गुण बढ़ा लिया। इसी तरह नौ नौ वर्षों की एक एक अवधि बाधकर उसने प्रत्येक अवधि में एक एक गुण बढ़ाते और एक एक अवगुण घटाते घटाते पैंतालिस, चौवन, तिरेसठ, बहत्तर और इक्यासी की अवधि पूरी की। अन्त में नब्बे तक पहुँचते पहुँचते अवगुण शून्य हो गया और नौ जैसे निर्दोष और निर्विकार रूप में संसार में आया था वैसा ही निर्विकार होकर कृतार्थ हो गया।[1]

किसी भी देश की संस्कृति उस देश के साहित्य में सुरक्षित रहती है। शिक्षा के अभाव में नवीन साहित्य का सृजन प्रायः बन्द हो जाता है और पुराना साहित्य विस्मृत हो जाता है। वस्तुतः देश का सांस्कृतिक पतन होने लगता है। सांस्कृतिक पतन से नैतिक पतन होता है क्योंकि नीति के निर्देशक सिद्धान्त संस्कृति में ही निहित होते हैं। नैतिक पतन से वह देश अपना अस्तित्व ही

1. रामनरेश त्रिपाठी – "गान्धीजी का मानस प्रेम"

खो बैठता है और अन्य देश की राजनैतिक दासता स्वीकार कर लेता है। इसीलिये महात्मा गांधी ने देश के नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिये शिक्षा की समुचित व्यवस्था का मार्ग सुझाया। भारत की तत्कालीन शिक्षा पद्धति अत्यन्त अनुपयोगी थी। शिक्षा का उद्देश्य विदेशी शासन को ठीक प्रकार से चलाने के लिये लिपिक (clerk) तैयार करना था। प्राथमिक स्तर पर तीन आर (Reading, Writing and Arithmetic) की शिक्षा दी जाती थी जो बालक के भावी व्यावहारिक जीवन के किसी काम की न थी।

महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा का सुझाव एकांगी न था। उसके बुनियादी आधार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने चरित्र-निर्माण की ओर विशेष बल दिया।[1] चरित्र-निर्माण के लिये आवश्यक है कि छात्रों में इन्द्रिय-निग्रह आदि मानवीय गुणों का विकास किया जाय। इन गुणों का विकास मन के नियन्त्रण से ही संभव हो सकता है। गीता में मन को चंचल कहा है तथा उसको वश में करना वायु को वश में करने के समान कठिन बताया गया है।[2] योगियों ने योग क्रियाओं द्वारा एवं विचारकों ने चिन्तन तथा मनन क्रियाओं द्वारा मन को नियन्त्रित करने का मार्ग सुझाया है। महात्मा गान्धी ने बुनियादी शिक्षा का स्वरूप देकर मन को नियन्त्रित करने का सहज मार्ग सुझा दिया। इससे दोहरा लाभ सिद्ध हुआ--प्रथम तो यह कि शिक्षाविदों के सिद्धान्त के अनुसार क्रिया द्वारा सीखने (Learning by doing) के साथ-साथ बालकों के शारीरिक एवं मानसिक अवयवों का एक साथ विकास होना सम्भव हो

---

1. "मैंने हृदय के परिष्कार अथवा चरित्र के निर्माण को हमेशा पहला स्थान दिया था और चूंकि मेरा यह विश्वास था कि उनकी उम्र और उनका लालन-पालन कितना ही, अलग-अलग तरह का क्यों न हो, नैतिक शिक्षा उन सबको एक सी दी जा सकती है। मैं मानता था कि उनकी शिक्षा के लिये चरित्र निर्माण सही बुनियाद है और यदि बुनियाद सही दृढ़ता से रखदी गई तो मुझे विश्वास था कि बालक और सब बातें आने आप अथवा हितैषियों की मदद से सीख लेंगे।"--गान्धी।

'नई तालीम की ओर' पृष्ठ सं. 18

2. गीता अध्याय 6 श्लोक 34

सका।[1] दूसरा यह कि क्रिया द्वारा उत्पादित श्रम से बालकों में स्वावलम्बी बनने की वृत्ति जागृत हुई। उदाहरण के लिये चरखा कातने की क्रिया को लिया जा सकता है। इससे चित्त निग्रह तो होता ही है साथ ही उत्पादित श्रम का आर्थिक मूल्य भी होता है। सूत के अंक आदि निकालने में विद्यार्थियों को गणित के चारों सरल नियम--जोड़, बाकी, गुणा व भाग सुगमतापूर्वक सिखाये जा सकते हैं। चरखे के माध्यम से गान्धी जी ने छात्रों में राष्ट्र एवं संस्कृति के प्रति निष्ठा की भावना जागृत की।

चरित्र विद्यार्थियों पर थोपने की वस्तु नहीं होती। उसकी तो छात्रों को उचित वातावरण में प्रत्यक्ष आदर्शों द्वारा प्रेरणा दी जा सकती है। इसीलिये महात्मा गान्धी ने शिक्षकों के चारित्र्य पर विशेष बल दिया।[2] उन्होंने कहा था कि जब तक चरित्रवान शिक्षक विद्यार्थियों को शिक्षा देने का दायित्व न लेंगे तब तक उनमें चरित्र बल उत्पन्न नहीं किया जा सकता। चरित्र विकास के लिये जिस वातावरण की सृष्टि की आवश्यकता होती है वह भौतिक समाज से दूर रह कर ही की जा सकती है। महात्मा गान्धी ने इसी कारण अनेकों आश्रमों की स्थापना की थी एवं उनमें स्वयं शिक्षक के रूप में रह कर उन्होंने अनेकों विद्यार्थियों को मानवीय गुणों से युक्त किया।

किसी भी देश के सांस्कृतिक विकास का मूल स्रोत उस देश की भाषा होती है। भाषा का मन के संस्कारों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक अंग्रेजी भाषा ने हमारे शिक्षा जगत में पूर्ण आधिपत्य स्थापित

---

1. "इस तरह लड़के अपने हाथ से जो काम करते हैं, वह खुद भी बड़ा कीमती होता है। चूंकि काम के साथ-साथ बच्चों को सोचना भी पड़ता है इसलिये काम से उन्हें थकावट नहीं आती और उसके मूल में देश हित की भावना रहने के कारण इस शरीर श्रम को एक प्रकार का गौरव प्राप्त हो जाता है।"--गान्धी।

   'बुनियादी शिक्षा' पृ. सं. 33, 'हरिजन सेवक' 11-9-37

2. "नीचे के प्राथमिक दर्जे के शिक्षक जरूर चरित्रवान होने चाहियें। छोटे बच्चों के लिये उत्तम से उत्तम शिक्षक रखने में हमें रुपयों की रत्ती भर परवाह नहीं करनी चाहिये। हमारे पुरखों के समय में हमारे बच्चों को ऋषियों मुनियों से शिक्षा मिलती थी।"--गान्धी।

   'सच्ची शिक्षा' पृष्ठ सं. 44

कर दिया था। इस भाषा के प्रभाव ने हमारे मन के संस्कारों [illegible] उत्पन्न कर दिया था। हम भारत-माता-कर्ता [illegible] संस्कृति के रंग में पूर्णतः रंग चुके थे। हम सांस्कृतिक पतन के उस भयंकर परिणाम के शिकार हो गये थे जो आज तक हम [illegible] पड़ रहा है। अतएव गांधीजी हमारे धार्मिक और सामाजिक जीवन के चौराहे पर उन खतरों से सतर्क खड़े हो गये जो अपने हाथ के इंगित से शिक्षा का वातावरण की दुर्दशा भी [illegible] है। उन्होंने अंग्रेजी के स्थान पर अपनी देशी भाषाओं में शिक्षा देने को [illegible] देकर राष्ट्रीय जीवन के पुनरुत्थान हेतु हमारा मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने विदेशी भाषा का अन्धानुकरण करने वालों को खूब फटकारा। इसीलिए फरवरी सन् 1942 को जब उनको बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय की रजत-जयन्ती समारोह में आमन्त्रित किया गया तो वहाँ समस्त कार्य-संचालन को अंग्रेजी में होता देख कर उन्होंने असन्तोष प्रकट किया।[1]

विद्यार्थियों के मस्तिष्क में सदाचार के अंकुर रोपने के लिये धार्मिक शिक्षा के उर्वरक की आवश्यकता महात्मा गांधी ने बतायी। उनका कहना था कि जब तक छात्रों को धार्मिक शिक्षा न दी जायगी, उनमें सदाचार की भावना जागृत नहीं की जा सकेगी। धार्मिक शिक्षा के अभाव में ही विद्यार्थी भारतीय अतीत की संस्कृति को भूले हुये हैं। गान्धीजी ने धर्म का बड़ा विशद स्वरूप सामने रखा। उन्होंने सत्य और अहिंसा को ही सबसे बड़ा धर्म माना क्योंकि संसार के सभी धर्मों का मूल भूत आधार सत्य और अहिंसा ही है। इस दृष्टि से उन्होंने धार्मिक शिक्षा का सहज मार्ग सुझाते हुए कहा है—' *मेरे ख्याल से धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा या केवल सत्य ही करें तो भी काफी है। अहिंसा सत्य के पेट में ही समायी हुई है।* उसके बिना सत्य की खोज हो नहीं सकती। ऐसे सत्य और अहिंसा का जिस ढंग की शिक्षा से पालन हो उसी ढंग की शिक्षा धार्मिक शिक्षा हुई। ऐसी शिक्षा देने का सबसे बढ़िया तरीका यह है कि सभी शिक्षक सत्य और अहिंसा का पालन करने वाले हों।

1. "मेरा ख्याल था कि कम से कम यहां तो सारी कार्रवाई अंग्रेजी में नहीं बल्कि राष्ट्र भाषा में होगी। मैं यहां बैठा यही इन्तजार कर रहा था कि कोई न कोई तो आखिर हिन्दी या उर्दू में कुछ कहेगा। हिन्दी उर्दू न सही कम से कम मराठी या संस्कृत में ही कोई कुछ कहता। लेकिन मेरी सब आशायें निष्फल हुईं।

अंग्रेजों को तो हम गालियाँ देते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान को गुलाम बना रखा है; लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद ही गुलाम बन गये हैं।"—गान्धी :

विद्यार्थियों के लिये उनका सत्संग ही धार्मिक शिक्षा है, फिर भले ही वे गुजराती, संस्कृत, गणित या अंग्रेजी किसी भी विषय की क्लास में बैठे हो।'' [1]

धर्म के प्रति गान्धी जी का दृष्टिकोण बड़ा उदार था। हिन्दू धर्म मे आस्था रखते हुये भी उन्होने सभी धर्मों का समान आदर किया। यही कारण था कि क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी श्रद्धावान होकर गान्धीजी के अनुयायी बन गये। साम्प्रदायिक कटुताओं को दूर करने में गान्धीजी बहुत कुछ सफल रहे। उन्होंने भारतीय संस्कृति की समन्वय-शक्ति को पहचाना था। उसी के मूल भूत आधार पर उन्होने सभी धर्मावलम्बियों को एक मार्ग पर चलाने का भरसक प्रयास किया। उनकी प्रार्थना सभाओं मे हिन्दू और मुसलमान सभी एक साथ भाग लेते थे। जब गान्धीजी से पूछा कि गैर हिन्दू रामधुन में कैसे भाग ले सकते हैं तब उन्होंने कहा—"जब कोई यह ऐतराज उठाता है कि राम का नाम लेना या रामधुन गाना तो केवल हिन्दुओं के लिये है, मुसलमान उसमें किस तरह शरीक हो सकते हैं, तो मुझे मन ही मन हँसी आती है। क्या मुसलमानों का भगवान हिन्दुओं, पारसियों और ईसाइयों के भगवान से जुदा है। नहीं, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी ईश्वर तो एक ही है। उसके कई नाम हैं और उसका जो नाम हमें सबसे ज्यादा प्यारा होता है उस नाम से हम उसे याद करते हैं।'' [2]

अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक वृत्तियों की रक्षा करते हुये महात्मा गान्धी ने जिस ईश्वर की उपासना का मार्ग बताया वह गीता मे उपदेशित मार्ग एवं कबीर तथा रामानन्द द्वारा समर्थित मार्ग से भिन्न नही था। जिस राम के विषय मे गोस्वामी तुलसी दास ने 'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु करम करै विधि नाना' तथा कबीर दास ने 'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना' कहा है, उसी सर्वभूत-रत राम की उपासना का मार्ग गान्धीजी ने इस प्रकार सुझाया है—

"मेरा राम, हमारी प्रार्थना के समय का राम, वह ऐतिहासिक राम नही है जो दशरथ का पुत्र और अयोध्या का राजा था। वह तो सनातन अजन्मा और अद्वितीय राम है। मैं उसी की पूजा करता हूँ। उसी की मदद माँगता हूँ। आपको भी यही करना चाहिये। वह समान रूप से सब किसी का है। इसलिये मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों किसी मुसलमान को या दूसरे

1. गान्धी—'सच्ची शिक्षा' पृष्ठ 143 'नव जीवन' 9-9-1928

2. गान्धीजी—"राम नाम" पृष्ठ 18

किसी को उसका नाम लेने में हैरान होना चाहिये। लेकिन यह कोई जरूरी नहीं है कि वह राम के रूप में ही भगवान को पहचाने – उसका नाम ले। वह मन ही मन अल्लाह या खुदा का नाम भी इस तरह जप सकता है जिससे उसमें बेसुरापन न आने।"[1]

कहना न होगा कि गान्धी जी की समग्र दृष्टि उन सभी समस्याओं पर टिकी हुई थी जो भारत के सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक, एवं सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बद्ध थीं। यद्यपि उनका आग्रह भारत में स्वराज्य की स्थापना करना था परन्तु उन्होंने यह अनुभव किया था कि सांस्कृतिक—पुनर्जागरण के आधार के बिना यह लक्ष्य यदि प्राप्त भी हो जाय तो भी हम उसकी रक्षा करने में पूर्णतः समर्थ नहीं हो सकेंगे। उन्होंने अपने शरीर को सदाचार की अग्नि में स्वर्णवत् तपाया था और देशवासियों के सम्मुख जीवन के नए आदर्श रखे थे। सर्व-भूत हित के लिये जिन कल्याणकारी मानवीय आदर्शों को महात्मा गान्धी ने हमें दिया उन्हीं पर आधारित हमारी अन्तर्राष्ट्रीय वैदेशिक नीति की सराहना सर्वत्र की जाती है।

1. 'हरिजन सेवक' 28–4–1946

धर्म और गांधी युग

—रामेश्वर प्रसाद शर्मा

चला लक्ष्मी चला प्राणाः चला जीवति यौवनम् ।
चला चले च संसारे धर्म एकोहि निश्चलः ॥

इस चल और अचल संसार में लक्ष्मी चलायमान है, प्राण चलायमान है, जीवन और यौवन भी चलायमान है केवल एक धर्म ही चलायमान नहीं है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी यद्यपि आज हमारे समक्ष नहीं हैं, किन्तु भारतवासियों के प्रति उनके किये हुए कर्तव्य हमें आज भी शिक्षा प्रदान कर रहे हैं और करते रहेंगे। धर्म और शिक्षा दोनों में थोड़ा बहुत अन्तर होने पर भी, दोनों ही जीवन के प्रेरक और व्याख्याता हैं। एक क्रिया है तो दूसरा आत्म बल। महात्मा गांधी एक उच्चकोटि के दार्शनिक थे। अपने जीवन दर्शन के मूल सिद्धांत सत्य तथा अहिंसा को प्राप्ति योग्य बनाने हेतु ही उन्होंने बेसिक शिक्षा योजना को जन्म दिया।

अब हम विभिन्न युगों में शिक्षा के धार्मिक उद्देश्यों का संक्षिप्त परिचय देते हुए गांधी युग में धार्मिक शिक्षा के उद्देश्य को निर्धारित करने का प्रयत्न करेंगे।

वैदिक एवं ब्राह्मण कालीन—शिक्षा और धर्म में बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के मार्ग का निर्देशन-कार्य करते हुए भी अपना अलग-अलग अस्तित्व रखते हैं। समाज इनसे विभिन्न रूपों में प्रभावित होता है। भारत की प्राचीन वैदिक शिक्षा का उद्देश्य धर्मशास्त्र था। शिक्षा

के प्रदाता धर्म के व्याख्याता ही हुआ करते थे। मैकडॉनल ने कहा है कि—"प्राचीन वैदिक काव्य के निर्माणकाल से ही हम भारतीय साहित्य पर एक प्रकार से लगभग एक हजार वर्ष तक की धार्मिक छाप लगी हुई देखते हैं और इतना ही नहीं वैदिक काल के वे उत्तरार्त्ती ग्रंथ जिन्हें पूर्ण धार्मिक नहीं कहा जा सकता, सामान्यतः धर्म प्रसार का उद्देश्य ही रखते हैं। यह तो 'वैदिक' शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि वेद का अर्थ ज्ञान ('विद्' मूल धातु से) होता है और सम्पूर्ण पवित्र ज्ञान का साहित्य की शाखा के रूप में बोध कराता है।" डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने भी कहा है कि—"भारतीय आर्यों की प्रथम साहित्यिक वाणी ऋग्वेद की रचना के लगभग एक हजार वर्ष बाद भी भारतीय साहित्य को धार्मिक भावनाएं ही सतत् अनुप्राणित करती रही हैं।"

धार्मिक भावनाओं का विकास कई प्रकार से किया जाता था। संध्या, पूजा-पाठ, प्रार्थना, यज्ञ आदि उसके माध्यम थे। इस प्रकार गुरुकुल का सम्पूर्ण वातावरण ही धर्म की पावन झंकारों से गुंजित था।

वैदिक कालीन शिक्षा का सर्वोच्च अंग विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करना था। गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य के पालन पर विशेष बल देकर, गुरु के स्वयं के आदर्श द्वारा, विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण किया जाता था। चरित्र के आगे विश्व की कोई वस्तु नहीं ठहरती है। नैतिकता सदाचार अ[illegible] सर्वोच्च धर्म है।

बौद्ध कालीन धार्मिक शिक्षा—बौद्ध कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्[illegible] मानवीय गुणों का विकास करना था। मानवमात्र के कल्याण के लिए वि[illegible] बन्धुत्व की सरिता प्रवाहित की जाती थी। साम्प्रदायिक भावनाओं को [illegible] करना और समस्त भौतिक दुःखों से मानव को छुटकारा दिलाना उस काल [illegible] शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। बौद्ध शिक्षा में भी धर्म को प्रधानता थी। इ[illegible] लिए 'सुतान्त विनय तथा धर्म' की शिक्षा, छात्रों की अवस्था को देखकर दी जाती थी। इत्सिंग नामक चीनी यात्री ने नालन्दा विश्व-विद्यालय [illegible] विशेषताओं में लिखा है कि—"बौद्ध शिक्षा जीवन तथा धर्म के साहचर्य प[illegible] आधारित थी।"

मध्य कालीन धार्मिक शिक्षा—मुसलमानी शिक्षा में नैतिकता को भी यथेष्ट महत्व दिया जाता था, क्योंकि इस्लाम धर्म का उद्देश्य एक विशे[illegible] प्रकार की नैतिकता का विकास करना था। मदरसों में उच्च चरित्र वाले

व्यक्ति नियुक्त होते थे । बालकों को नैतिकता से ओतप्रोत काव्य कंठाग्र कराये जाते थे ।

वर्तमान भारत को धार्मिक शिक्षा—वर्तमान भारत मे धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण को अपनाया है ।

उपरोक्त प्रत्येक युग में धार्मिक शिक्षा का अत्यन्त महत्व रहा है । क्योंकि यदि मनुष्य मे धार्मिक भावना नहीं होगी तो उसके मस्तिष्क मे अच्छे विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकते । बिना उत्तम विचारों के वह चरित्रवान भी नहीं हो सकता । उत्तम विचार वाला व्यक्ति ही अधिक शिक्षित होता है । जैसा स्वामी विवेकानन्दजी ने शिक्षा के उद्देश्यों में बताया है—"यदि आपने उत्तम विचारों को ग्रहण करके उन्हें अपने जीवन तथा चरित्र का आधार बना लिया है तो आप उस व्यक्ति से अधिक शिक्षित हैं जिसने समस्त पुस्तकालयों को कण्ठाग्र कर लिया है ।"

भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक डा. राधाकृष्णन् ने कहा था कि – "शिक्षा का उद्देश्य न तो राष्ट्रीय कुशलता है और न अन्तर्राष्ट्रीय एकता वरन् व्यक्ति को यह अनुभव कराना है कि बुद्धि से भी अधिक गहराई मे एक तत्व है जिसे तुम चाहो तो आत्मा कह सकते हो ।"

धर्म और उसका महत्व :

धर्म का उदय मानव-सभ्यता और संस्कृति के उदय के साथ ही हुआ । मनुष्य को शांति देने के लिये उसने आदिकाल से ही बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये हैं । उसने दुःख के समय मनुष्य को सहारा दिया है, कठिनाई मे रास्ता दिखाया है और निराशा में आशा का सचार किया है । उसने ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतन सत्ता की अनुभूति कराई है और उसी ने सदैव नई आशा, स्फूर्ति और चेतना का सचार किया है । एक समय था जबकि धर्म जीवन के सब अगों पर पूरी तरह छाया हुआ था । राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति सब उससे प्रेरणा लेते थे, उसके दिखाए हुए मार्ग पर चलते थे और उसके आदर्शों को शिरोधार्य करते थे । उसने व्यक्ति और समाज को असत्य से हटाकर सत्य की ओर, असुन्दर से हटाकर सुन्दर की ओर, अशिव से हटाकर शिव की ओर और अन्धकार से हटाकर प्रकाश की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया है । जीवन मे इतना महत्वपूर्ण स्थान रखने हुए भी आज धर्म वैज्ञानिक प्रगति, आर्थिक सघर्ष, कुछ स्वार्थियों के कुचक्र तथा ऐसे ही कतिपय अन्यान्य कारणों से न्यूनतम प्रभाव रखने वाला हो गया । जो धर्म कभी विश्व भर के

देशों की शिक्षा संस्थाओं एवं समग्र जीवन को अनुशासित करता था; वही आज ठुकरा दिया गया है, घोर भौतिकता और आपाधापी के बीच घिर गया है, भूलकर भी किसी की दृष्टि उधर नहीं जाती है, जैसे लोगों को धर्म पर ध्यान देने का आज एकदम अवकाश ही न हो। संभवतः आज भी शिक्षा पर धर्म का अखंड राज्य बना रहता यदि मध्यकाल में धार्मिक संकुचितता एवं धर्मान्धता ने अपनी सीमा का अतिक्रमण करके मनुष्य के शोषण का प्रयत्न न किया होता। धर्म के नाम पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्मावलम्बियों के संघर्ष, घोर अत्याचार एवं हत्याकाण्ड भारत तथा संसार के सभी देशों में हुए और धर्म के नाम को कलंकित करते रहे। परिणामस्वरूप लोगों के मन में धर्म के प्रति विश्वास की सुदृढ़ दीवार हिल उठी। धीरे-धीरे लोगों में यह भावना घर करती गई कि धर्म उनकी उन्नति का साधन न होकर उन्हें मूर्ख बनाने तथा शोषण करने का प्रयास है। यूरोप में रूसो, लॉक आदि दार्शनिकों ने शिक्षा पर धर्म के आधिपत्य का घोर विरोध किया और मानव की तर्क बुद्धि पर विशेष बल दिया।

धर्म का स्वरूप और लक्षण :—

'धर्म' की व्याख्या लोगों ने अनेक प्रकार से की है जिससे लोगों के बीच धर्म के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में समय-समय पर बड़ा भ्रम फैलता रहा है।

कुछ लोग धर्म का अर्थ केवल कर्मकाण्ड तथा पूजा, अर्चना ही समझते हैं। वे प्रार्थना, संध्या वंदन, हवन, नमाज आदि को ही धर्म मानते हैं। जहाँ तक 'धर्म' शब्द का सम्बन्ध है, उसकी व्युत्पत्ति के आधार पर तो यही कहना पड़ता है कि मनुष्य जो धारण करे वही उसका धर्म है अर्थात धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के कर्तव्य से है।

कुछ लोग धर्म के सामाजिक रूप को अधिक महत्व प्रदान करते हैं और उनकी दृष्टि में समाज-सेवा ही मनुष्य का धर्म है।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार धर्म का अर्थ बड़ा व्यापक है। हमारे शास्त्रों में यह दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है — धर्म तथा मत। धर्म आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाता है, किन्तु मत एक निश्चित एवं सीमित विचारधारा है जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। एक धर्म के अंदर अनेक मत हो सकते हैं और उनमें परस्पर भिन्नता भी हो सकती है। प्रत्येक मत में अनेक छोटे-छोटे सम्प्रदाय भी होते हैं। हिन्दू धर्म में दादूपंथी, नानकपंथी, रामानुज और राधास्वामी आदि मत अथवा सम्प्रदाय हैं।

धर्म का सम्बन्ध आध्यात्मिकता से है। वह मनुष्य को आध्यात्मिक सुख और शान्ति प्रदान करता है। धर्म ने मानव आत्मा से उच्चतर एक परमात्मा की कल्पना की है जो रूप और गुण की दृष्टि से सर्वोच्च है। यही ईश्वर है, इसे ही हम सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वत्र मानते हैं। यही सृष्टि को उत्पन्न करता है, उसका पालन-पोषण करता है और यही अन्त में उसका लय करता है। आदर्शवाद 'सत्यं, 'शिवं, 'सुन्दरम्' को ही स्वरूप मानता है। इस परमात्मा की अनुभूति और प्राप्ति में ही आत्मा की उन्नति समाई है। आत्मा को परमात्मा से मिलाने का काम धर्म ही करता है।

मनुष्य अपने भीतर ईश्वरीय गुणों का विकास करके ही ईश्वर प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो सकता है। ये ईश्वरीय गुण सत्य, शिव, सुन्दर से उद्भूत होने के कारण मनुष्य के नैतिक, मानसिक और भावनात्मक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। धर्म मनुष्य को बुराइयों से बचाकर भलाई की ओर अग्रसर करता है और इस प्रकार वह मानव-जीवन के सर्वाङ्गीण उत्थान का द्वार खोलता है। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं—

धृति, क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह।
धीर्विधा सत्यंक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

ये हैं-धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, स्वच्छता, इन्द्रिय निग्रह, विद्वता, विवेक-शीलता, सत्य और अक्रोध।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रास का कथन है—"यह विश्वास कि प्रेम सत्यं शिवं, सुन्दरम् जीवन की महानतम मान्यताएँ हैं, वस्तुतः धर्म है। अपने तथा समाज के जीवन में इनकी उपलब्धि का जो प्रयत्न हम करते हैं उसमें एक शक्ति हमारी सहायता करती है, हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। अपने तथा अन्य व्यक्तियों के जीवन में सत्य, शिव तथा सुन्दर का प्रवेश कराने के लिए हमारी समस्त शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक चेष्टायें इस शक्ति के प्रयोजन को सिद्ध करने में सहायता करती हैं। यही शक्ति ईश्वर अथवा धर्म है।

मैक्समूलर ने लिखा है "अनन्त का साक्षात्कार करने के लिये जो आंतरिक शक्ति प्रदान करती है, वही धर्म है।"

फिट के शब्दों में धर्म का सार है—"किसी ऐसे आदर्श लक्ष्य की ओर

क्रिया और इच्छा का प्रवाह, जीव निरंतर जो सर्वोत्कृष्ट मान्य होता है तथा इच्छा के समस्त स्वार्थपूर्ण भावों के ऊपर अधिक भावों में स्थापित रखता है।

जॉन हेन्स के शब्दों में आकाश-गंगा के निर्माता तथा सच्चे शासक के प्रतिभासित और उसके जीवों के प्रति प्रेम ही मेरा धर्म है।

जॉन बेली का कथन है कि धर्म वह प्रेरणा है जो उन कर्तव्यपरायणों एवं भक्तों में आती है जो ज्ञान द्वारा उच्चतम मूल्यों को जानकर उनके प्रति सच्चे रहते हैं और इस प्रकार शाश्वत तत्व के पक्ष में रह कर उनकी सहायता प्राप्त करते हैं।

उपरोक्त विद्वानों की परिभाषाओं के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म और नैतिकता का एक रूप है। जीवन के आध्यात्मिक तत्वों एवं मानव से ईश्वर के सम्बन्ध का माध्यम धर्म है।

धर्म के आवश्यक तत्व –

संक्षेप में धर्म के तत्वों का इस प्रकार संक्षिप्तीकरण किया जा सकता है –

(1) समष्टि-कल्याण एवं आनन्द की आकांक्षा और सच्चिदानन्द की प्राप्ति का अन्तिम ध्येय।

(2) आत्म-समर्पण की वृत्ति एवं दुःख झेलने का साहस।

(3) सचराचर का व्यापक प्रेम एवं नैतिकतापूर्ण जीवनयापन की कामना।

(4) एक अव्यक्त श्रद्धा और विश्वास जिसके मूल में उल्लास हो।

यह सब तत्व मिलकर धर्म का स्वरूप निश्चित करते हैं और अंतर्चेतना उसमें गति भरती है।

गाँधी युग – गांधी जी युग पुरुष थे। वह भारत ही नहीं एशिया की जाग्रति के प्रतीक थे। उनके व्यक्तित्व में योद्धा की निर्भयता, विद्वान की प्रखरता, साधक की निष्ठा, तपस्वी की तेजस्विता, राजनितिज्ञ की कुशलता और भक्त की विव्हलता का बड़ा ही सुन्दर सम्न्वय हुआ था। अपने इन गुणों से उन्होने पूरे एक युग को प्रभावित किया।। सन् 1919 से लेकर अपने अन्तिम समय 1948 तक उनकी वाणी ही राष्ट्रीयता की वाणी रही और उनके आन्दोलन ही जनता के आन्दोलन रहे। वह जिधर मुड़े उधर करोड़ों आँखें लग गई। यही कारण है कि भारत उन्हें राष्ट्रपिता और विश्व उन्हे सत्य और अहिंसा का देवदूत मानकर उनको पूजा करता है।

गांधीजी का जन्म 2 अक्टूबर सन् 1869 को पोरबन्दर (सौराष्ट्र) के एक वैष्णव वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता पोरबन्दर और राजकोट के एक तेजस्वी दीवान थे। बाल्यावस्था में सत्य-निष्ठा के अतिरिक्त कोई अन्य विशेषता उनमें नहीं दिखाई देती थी जिससे उनके आगे चलकर महापुरुष बनने का संकेत मिलता। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। सन् 1887 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। इन्हीं दिनों पिताजी की मृत्यु हो गई। वह भावनगर के एक कालेज में भर्ती हुए लेकिन उनका मन वहां नहीं लगा।

इस प्रकार गांधीजी की बाल्यावस्था और शिक्षा का वर्णन करके हम अब आपको उनकी संक्षिप्त आत्मकथा में धर्म की झलक बताते हैं।

राजकोट में मुझे सब सम्प्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा अनायास मिली। मैंने हिन्दू-धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रति आदर-भाव रखने की तालीम पाई। क्योंकि माता-पिता वैष्णव-मन्दिर जाते, शिवालय जाते तथा राम-मन्दिर भी जाते और हम भाइयों को भी ले जाते अथवा भेज देते थे। इसके सिवा पिताजी के पास जैन-धर्माचार्यों में से कोई न कोई सदैव आते रहते। पिताजी भिक्षा देकर उनका आदर-सत्कार भी करते। वे पिताजी के साथ धर्म तथा व्यवहार-चर्चा किया करते। इसके सिवा पिताजी के मुसलमान तथा पारसी मित्र भी थे। बहुत बार ये अपने-अपने धर्म की बात सुनाया करते और पिताजी आदर व प्रेम के साथ उनकी बातें सुनते। ऐसी चर्चा के समय मैं उनका शुश्रूषक होने के कारण प्रायः ही उपस्थित रहता था। इस सारे वातावरण के प्रभाव से मेरे मन में सब धर्मों के प्रति समभाव पैदा हुआ।

इस प्रकार मेरे मन में अन्य धर्मों के प्रति समभाव आया। यह नहीं कह सकता कि उस समय ईश्वर के प्रति मेरे मन में कुछ आस्था थी, लेकिन एक बात ने मेरे मन में जड़ जमाली। वह यह कि संसार नीति पर स्थिर है, नीति-मात्र का समावेश सत्य में है। पर सत्य की खोज अभी बाकी है। दिन-दिन सत्य की महिमा मेरी दृष्टि के सामने बढ़ती गई, सत्य की व्याख्या विस्तार पाती गई और अब भी पाती जा रही है।

उस समय नीति-विषयक एक छप्पय ने मेरे हृदय में घर कर लिया। अपकार का बदला अपकार नहीं, वरन् उपकार ही होना चाहिए, यह वस्तु जीवन-सूत्र बन गई। उसने मेरे मन पर अपनी सत्ता चलानी शुरू कर दी। अपकारी का भला चाहना और करना इसका मैं अनुरागी बन गया। उसके अगणित प्रयोग किये। वह चमत्कारी छप्पय यह है—

पाणी आपने पाय, भलूं भोजन तो दीजे,
आवी नमावे शीश, दंडवत कोडे कीजे।
आपण घासे दाम, काम महोरेनूं करीए;
आप उगारे प्राण, ते तणा दुःख मां मरीए।
गुण केडे तो गुण दश गणो, मन वाचा कर्मे करी;
अवगुण केडे जे गुण करे, ते जग मां जीत्यो सही।

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :—

जो हमको जल-पान करावे, उसको भोजन दीजे;
आने को जो शीश नवावे, उसे दंडवत कीजे।
पैसे जो दे हमें उसे मोहर दे देना;
और बचावे प्राण दुःख में उसके मरना।

गुण के बदले दस गुना, जो मन वाचा कर्म से; अवगुण करते गुण करे, जग जीता इस धर्म से।

गांधीजी की आत्मकथा में उपरोक्त धर्म की झलक से हमें यह प्रतीत होता है कि उन्हें बचपन से ही धर्म का असली रूप प्राप्त हो चुका था। बालक पर बचपन का ज्ञान स्थाई होता है, और वह जीवन-पर्यन्त बना रहता है। महात्मा गांधीजी का बचपन में प्राप्त धर्म-ज्ञान हमें पूरे गांधी युग में दृष्टि-गोचर होता है। गांधीजी ने अपने समस्त जीवन में सत्य और अहिंसा का पालन किया और सम्पूर्ण भारतवासियों को सत्य और अहिंसा का पाठ सिखाया। सत्य और अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है जैसा कहा गया है कि अहिंसा परमो धर्मः। सत्य के लिए दोहे में कहा गया है—

सत्य बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप,
जाके हृदय साच है वाके हृदय आप।

गांधीजी ने भारतवासियों को धर्म का असली रूप बताया। उन्होंने अपना जीवन सदाचार में व्यतीत करते, आत्मकल्याण में सलंग्न कर देश-हित में लगा दिया। महात्मा गांधीजी ने मुक्ति प्राप्त करने के लिए कोई वन में जाकर तपस्या नहीं की और उन्होंने अपने जीवन में राजनीति और देश भक्ति को अपनाकर आत्म कल्याण के मार्ग एवं सदाचरण का परित्याग नहीं किया। वे गीताजी के परम भक्त थे उसे वे माता कहकर पुकारते थे। देशवासियों को भी उन्होंने गीताज्ञान प्रदान करने के लिए "गांधी साहित्य गीता माता" नामक ग्रन्थ में अपने भाव प्रगट करते हुए गीता का अर्थ स्पष्ट किया है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि महात्मा गांधीजी सच्चे ईश्वर भक्त और साथ ही पक्के देश भक्त थे। यही कारण है कि गांधी युग में करोड़ों

व्यक्ति उनके अनुयायी बन गए और उन्होंने धर्म का असली ज्ञान अभिव्यक्त कर दिया। इस तरह भारतवासियों को गांधी युग द्वारा धर्म का असली ज्ञान प्राप्त तो हो चुका है किन्तु हम देखते हैं कि हमारे देशवासियों के जीवन में व्यावहारिक सदाचरण द्वारा धर्माचरण दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका कारण मेरे विचार से यही है कि शिक्षा क्षेत्रों में धर्म का अध्ययन नहीं कराया जाता इसी कारण आजकल विद्यार्थियों में अनुशासन हीनता; बेकारी की समस्या और सर्वांगीण विकास का अभाव पाया जाता है। अतः शिक्षा के उच्चाधिकारियों से मेरा यह निवेदन है कि वे शिक्षा के क्षेत्रों में धर्म की शिक्षा अनिवार्य करदें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उच्चाधिकारी इस ओर ध्यान देंगे और देश के भावी नागरिकों को सच्चा देश-भक्त और ईश्वर-भक्त बनाने के लिए धर्म की शिक्षा प्रारम्भ करेंगे।

गांधीजी का सत्याग्रह एवं टालस्टाय आश्रम की उपलब्धियां

—शिवचरण मेनारिया

युग पुरुष बापू के जीवन एवं कार्यों को विभिन्न कोणों से देखने पर उनके व्यक्तित्व में अनेक व्यूह दृष्टिगत होते हैं । वे सत्यवादी, सत्यान्वेषी, साधक, दार्शनिक, भक्त, नैतिकता के संस्थापक, समाज-सुधारक, मानवता के उपासक, कुशल नेता, राजनीतिज्ञ, संत और तपस्वी थे । सत्य की अनुभूति ने गांधीजी के समक्ष जीवन और जगत के प्रयोजन तथा उसके लक्ष्य को उद्घाटित कर दिया था । राष्ट्रपिता गांधीजी के सत्य और सुन्दर की झलक उनके साथ रहने वालों को मिल जाया करती थी ।

अफ्रीका में गांधीजी ने लगभग 20 वर्ष व्यतीत किए । वहां पर बसे गोरों की कालों के प्रति घृणा एवं अन्यायी प्रवृत्ति ने बापू को उनके विरुद्ध आंदोलन करने हेतु प्रेरित किया । बापू का यह आन्दोलन सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है । सत्याग्रह अर्थात सत्य के प्रति आग्रह की यह प्रवृत्ति उनमें शुद्धतः बचपन से ही रही है, किन्तु 'सविनय आज्ञा भंग' का स्थूल दर्शन सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में होता है । भारतीयों की दुर्दशा तथा अफ्रीका में हुए अपने अपमान ने बापू को सत्याग्रह हेतु प्रेरित किया । उन्होंने अपनी अनुभूति व्यक्त करते हुए लिखा है :—

"मैं अपने कर्तव्य का विचार करने लगा। क्या मुझे अपने हक-हकूकों के लिए लड़ना चाहिए ? या अपमान को सहन करके प्रिटोरिया को जाना चाहिए और मुकदमा समाप्त होने पर ही वहां से लौटना चाहिए। अपना कर्तव्य पूरा किए बिना भारत लौटना मेरी नामर्दी होगी। यह काले-गोरे के भेद-भाव का रोग तो बड़ा गहरा था। मेरा अपमान तो रोग का एक लक्षण मात्र था। मुझे तो रोग को जड़-मूल से खोदकर नष्ट करना चाहिए और उस प्रयत्न में जो भी कष्ट आये सहन करना चाहिये।"

सत्याग्रह के प्रति बापू के विचार बड़े परिपक्व हो चुके थे। उसकी व्यापकता एवं अलौकिकता का ज्ञान हो जाने से बापू शांत और सन्तुष्ट थे। किन्तु सत्याग्रही अपने सत्याग्रह की अवधि को सीमाबद्ध तो नहीं कर सकता। उसके लिए तो लड़ना ही कर्तव्य है। इस लड़ाई का अर्थ था—जैल जाना अथवा देश निकाले का दण्ड पाना। जेल में चले जाने पर सत्याग्रही के बाल-बच्चों का क्या प्रबन्ध हो तथा जेल से छूटने पर उसकी आजीविका का क्या साधन हो ? यह विषय बापू के लिए बड़ा ही चिन्तापूर्ण था। सत्याग्रह को दीर्घकालीन तथा निरंतर बनाये रखने के लिए धन की अत्यधिक आवश्यकता थी तथा आवश्यकता थी आत्मबल और चारित्र्य पूंजी की।

बापू ने सत्याग्रहियों तथा उनके परिवार के पोषण के लिए हल ढूंढ निकाला। बापू ने सभी परिवारों को एक स्थान पर रखने तथा सामूहिक रूप से कार्य करने की योजना तैयार की। जिसके द्वारा जनता के धन को बचत तथा सत्याग्रहियों के परिवार वालों को साधारण जीवन के साथ-साथ पारस्परिक सहयोग एवं मिलजुल कर रहने की शिक्षा मिले। अतः गांधीजी यह चाहते थे कि कोई ऐसा फार्म उपलब्ध हो जाय, जो ट्रांसवल में ही जोहंसवर्ग के आसपास ही कहीं स्थित हो। जहां उक्त योजना को कार्यान्वित किया जा सके।

बापू के लिए वरदान-स्वरूप मि. केलनबेक ने जोहंसवर्ग से 21 मील दूर, लाले नामक रेल्वे स्टेशन के समीप 1100 एकड़ जमीन खरीदकर सत्याग्रहियों को इसका उपयोग करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। बापू ने स्थान को पसन्द किया और वहाँ पर मकान आदि बनवाकर सत्याग्रहियों के कुटुम्बों को बसाने का निश्चय किया। इस फार्म का नाम 'टालस्टाय फार्म' (टालस्टाय आश्रम) रखा गया। विस्तृत टालस्टाय फार्म में लगभग एक हजार फलदार पेड़ थे। नारंगी, एप्रिकाट तथा प्लम आदि फल इतने अधिक होते थे कि मौसम में सत्याग्रहियों द्वारा भरपेट खाने पर भी बचे रहते। फार्म

में एक छोटा-सा झरना बहता था, जहां से निर्मल और स्वच्छ जल प्राप्त हो सकता था।

गांधीजी के सत्याग्रह, शिक्षा, धर्म और चिकित्सा सम्बन्धी अन्वेषण का प्रयोगस्थल "टाल्सटाय फार्म" सत्याग्रहियों का मुख्य केन्द्र बन गया। सत्य, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य का आचरण करते हुए, वहीं बापू ने कालों के उद्धार हेतु किये जाने वाले सत्याग्रह की भूमिका तैयार की। गांधीजी का मूल उद्देश्य था – सत्याग्रहियों के कुटुम्बों को उद्योगप्रिय बनाना, पैसे बचाना और अन्त में स्वावलम्बी बनाना। यह सम्भव हो जाय तो सत्याग्रह को लम्बे समय तक चलाया जा सकता है, यह निश्चय कर बापू ने स्वावलम्बी जीवन का लक्ष्य अपने सम्मुख रखा।

स्वावलम्बन के पक्षपाती गांधीजी का यह आग्रह था कि किसी भी कार्य के लिए नौकरों का उपयोग न किया जाय। खेती-बाड़ी तथा मकान बनाने का कार्य भी जहां तक संभव हो, स्वयं किया जाय। मि॰ केलनबेक एक अच्छे स्थपति थे। उनके नेतृत्व में एक-दो कारीगरों तथा आश्रमवासियों ने अपना श्रम लगाकर दो महिनों में आवश्यक मकानों का निर्माण कर लिया। आश्रमवासी भोजन पकाने से लेकर पाखाना साफ करने तक का सम्पूर्ण कार्य स्वयं अपने हाथों करते थे।

सर्वप्रथम इस आश्रम में आकर बसने वाले लोगों में 40 युवक, 2-3 वृद्ध, 5 स्त्रियां तथा 20-30 बच्चे थे। ये धर्म की दृष्टि से हिंदु, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे तथा भारत के विभिन्न भागों, मद्रास, आंध्र, गुजरात तथा मध्यप्रदेश के निवासी होने के कारण इनकी भाषा, रहन-सहन तथा खान-पान में भी असाधारण भिन्नता थी। किन्तु आश्रम के निर्मल वातावरण में रहने के परिणामस्वरूप उनमे एकता की भावना तथा पुरुषार्थ का विकास हुआ। परिश्रम सभी के लिए शक्तिवर्धक सिद्ध हुआ। फार्म में रहते हुए श्रम के परिणामस्वरूप निर्बल सबल हो गये।

फार्मवासियों में यदि किसी को जोहंसवर्ग जाना होता था तो उसे पैदल जाना पड़ता था तथा अपना भोजन भी साथ ले जाना पड़ता था। इसके मूल में यही तथ्य निहित था कि अधिक से अधिक ऐसा प्रयास किया जाय कि धन की बचत हो। पैदल आने-जाने के इस नियम से सैकड़ों रुपयों का व्यय बचा तथा लोगों मे श्रम के प्रति भक्ति जाग्रत हुई। आश्रम का कोई नियम भारस्वरूप नहीं था। युवकों और स्त्रियों से उतना ही काम लेने का नियम रखा गया जितना वे खुशी के साथ कर सकें। बापू ने बलपूर्वक किसी

ी वहां नहीं रोक रखा था। वे सभी प्रसन्न थे और अपने जिम्मे का पूरा-पूरा ार्य अंजाम देते थे।

आश्रमवासियों के खान-पान और रहन-सहन में सादगी के समावेश र बापू ने अत्यधिक बल दिया। भोजन में चावल, दाल, तरकारी, रोटी, ूंगफली से बनाया जाने वाला मक्खन, नारंगी का मुरब्बा तथा शक्कर के ध का अधिक प्रयोग किया जाता था। आटा पीसने के लिए हाथ से चलाई ाने वाली लोहे की चक्कियां काम में ली जाती थीं। सामूहिक भोजन की यवस्था थी। रहन-सहन में भी कम से कम खर्च करने की भावना को महत्व ेते हुए अत्यन्त सादगी बरती गई थी। आश्रमवासियों को पहनने के लिए जदूरों के जैसे कपड़े (मोटे आसमानी रंग का पतलून और कमीज) बनवाये ाते थे, जिसकी सिलाई का कार्य आश्रम की स्त्रियां करती थीं। रसोई का ार्य पूर्णतया स्त्रियों के अधीन था, किन्तु एक-दो पुरुष भी उनकी सहायतार्थ गे होते थे। बरतन साफ करने का कार्य भी बारी बारी से सभी रते थे।

गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि यदि वे स्वावलम्बन के लक्ष्य को प्राप्त रने में सफल हुए तो सत्याग्रह को दीर्घकालीन बनाया जा सकेगा। बापू के ्रयत्नों के परिणामस्वरूप आश्रमवासियों में स्वावलम्बन की भावना का स तरह दृढ़ विकास हुआ कि वे भोजन बनाने से लेकर पाखाना साफ करने क, कृषि उत्पादन तथा उद्योग सम्बन्धि कार्यों का पूर्ण रुचि से सम्पन्न करने गे। खर्च की कमी तथा उद्योगों के प्रति रुचि बढ़ाने के लिये गांधीजी ने ालस्टाय आश्रम में अनेक सफल प्रयोग किये।

टालस्टाय आश्रम की गर्म आब-हवा में बन्द जूता (बूट) का पहनना व के लिये हानिकारक था। अतः बापू ने चटरकार (चप्पल) बनाने का ार्य निर्धारित किया। मि. केलनबैक ने मेरियनहिल के ट्रेपिस्ट मठ वाले दरियों के पास जाकर चप्पल बनाना सीखा। वहां से लौटकर उन्होंने बापू ो यह कार्य सिखाया तथा बापू ने अन्य लोगों को सिखाया। शीघ्र ही कार्य प्रगति हुई और लोग इतने अधिक चप्पल बनाने लग गये कि वे अपने मित्र-ग्गों में उन्हें बेच कर धन कमाने लगे।

टालस्टाय आश्रम में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि विभिन्न धर्मावलम्बी िवास करते थे, किन्तु बापू ने उनको ऐसे रंग में रंग दिया कि उनमें किसी ी प्रकार का धार्मिक विद्वेष कभी नहीं पनपा। आश्रमवासियों के लिये शराब, म्बाकू आदि का सेवन तो पूर्णतया निषिद्ध था। मांस भक्षण के सम्बन्ध में

अवश्य ही बापू को अत्यधिक विचार करना पड़ा। आश्रमवासियों में अनेक ऐसे थे जिनको जन्म से ही मांस खाने की आदत-सी थी। और उनमें से कतिपय तो ऐसे भी थे, जिन्हें गोमांस तक भी भाता था। बापू का धर्म इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकता था। गांधीजी निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि इस समस्या का कैसे समाधान किया जाय? क्योंकि सत्याग्रह की लड़ाई केवल निरामिष भोजियों से ही चलाना भी तो असंभव ही था।

बापू का यह कष्ट स्वयं ही दूर हो गया, जब उन्होंने यह प्रश्न विचारार्थ ईसाई बहनों के समक्ष रखा। बापू ने उनसे अलग रसोई की व्यवस्था, धन की कमी तथा अपनी भावनाओं का ज्ञान कराते हुए स्पष्ट किया कि ऐसी स्थिति में भी यदि वे मांस मांगेंगी चाहे वह गोमांस ही क्यों न हो तो वे उसकी व्यवस्था करेंगे। किन्तु गांधीजी को ऐसा कुछ भी नहीं करना पड़ा। ईसाई बहनों ने बापू से यह स्पष्ट कह दिया कि वे कभी भी मांस नहीं मांगेंगी। इस प्रकार बापू ने एक महानतम संकट से मुक्ति पाई। धार्मिक सहिष्णुता का अवलम्बन करने का आश्रम में अथक प्रयास किया गया। फार्म के सभी निवासी सायंकालीन प्रार्थना में सम्मिलित होते थे। प्रार्थना में भजनों के साथ-साथ कभी रामायण तो कभी कुरान का पाठ होता। भजनों में भी गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी सभी प्रकार के भजन गाये जाते थे। आश्रम के बहुतेरे लोग एकादशी का व्रत रखते थे। लोगों ने पी० के० कोतवाल के प्रभाव में आकर चातुर्मास भी किया।

मुसलमान नौजवानों को रोजा रखने हेतु प्रोत्साहित किया गया। उन्हें सरगही (सहरी) और रात्री के समय भोजन उपलब्ध कराने की भी व्यवस्था की गई। उनके धर्मभाव का सम्मान करते हुए अन्य आश्रमवासी भी एक समय भोजन करते थे। अन्तर केवल यही रहता था कि अन्य आश्रमवासी सायंकाल को भोजन करते और मुसलमान भाई रात्रि के समय भोजन करते। मुसलमान युवकों ने इतनी भलमनसाहत बरती कि किसी को भी ज्यादः तकलीफ नहीं हुई। वहां न तो कभी हिन्दू और मुसलमान युवकों में, बच्चों और स्त्रियों में झगड़ा हुआ और न ही किसी भेद-भाव की भावना का प्रस्फुटन हुआ। मूलतः सभी अपने-अपने धर्म पर दृढ़ रहते हुए भी एक दूसरे के प्रति पूरा आदर रखते थे तथा स्वधर्माचरण में परस्पर सहयोग देते थे।

टाल्सटाय फार्म शहर से काफी दूर था तथापि बीमारियों से बचने के लिये दवाइयों का सामान्य प्रबन्ध भी नहीं किया गया था। उसके मूल में थी बापू की प्राकृतिक चिकित्सा में अत्यधिक श्रद्धा। बापू ने लिखा है कि "मुझे

भोजन में सुधार और प्रयोग, धार्मिक, आर्थिक, और आरोग्य की दृष्टि से करने का शौक रहा है।'' इन प्रयोगों के साथ बगैर दवाइयों का सहारा लिये पानी तथा मिट्टी के उपचारों से रोग निवारण के प्रयोग भी बापू किया करते थे।

बापू का ऐसा विचार था कि सीधे सादे जीवन मे लोगो को बीमारी का कोई अन्देशा नही रहता। बापू को तो यह अभिमान हो चला था कि मैं बीमार हो ही नही सकता। गांधीजी की यह दृढ़ मान्यता थी कि मिट्टी, पानी, उपवास तथा भोजन मे परिवर्तन सम्बन्धी प्रयोग करके रोगो को समाप्त किया जा सकता है। बापू ने अपने प्रयोगों से एक 70 वर्षिय वृद्ध की दमे की बीमारी तथा एक स्टेशनमास्टर के पुत्र को टाईफाईड से मुक्ति दिलवाई। बापू के इन प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोगों ने तथा टालस्टाय फार्म मे रखी गई सादी जिन्दगी ने कौम के लगभग 3 लाख रुपयों की बचत की।

सत्याग्रह अपने जोर पर था। जनरल बोथा तथा जनरल स्मट्स अपने निश्चय से जरा भी हटने के लिये तैयार नहीं थे, तो दूसरी ओर सत्याग्रही भी मरते दम तक जूझने के लिये तैयार थे। यह लड़ाई कब तक चलेगी इसका किसी को भी अनुमान नही था। क्योंकि दक्षिण अफ्रीका की सरकार के विरुद्ध सत्याग्रहियों की यह लड़ाई हाथी के विरुद्ध चींटी की लड़ाई के सदृश थी। अनेक सत्याग्रही जेल जाते तथा यातनाए सहकर जरा भी विचलित नही होते थे। उनके परिवारों के पोषण के सम्बन्ध मे वे पूर्णतया आश्वस्त थे। क्योंकि टालस्टाय आश्रम मे उनके परिवारों के भरणपोषण की तथा बालको के शिक्षण की समुचित व्यवस्था थी।

सत्याग्रहियों के बालक बालिकाओं के शिक्षण को प्राथमिकता देते हुए टालस्टाय फार्म मे भी एक पाठशाला की स्थापना की गई। शिक्षण का भार मुख्यतः बापू तथा मि० केलनबेक पर ही था। चूंकि बापू को समय-समय पर अनेक कार्यों मे व्यस्त रहना पड़ता था, अतः पाठशाला मे अध्यापन कार्य हेतु कुछ युवकों को भी सहायतार्थ लगा दिया गया था। पाठशाला दोपहर के समय चला करती थी।

मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने का लोभ बापू संवरण नही कर सके थे। तमिल, तेलगु और गुजराती तीन भाषाओं को बोलने वाले बालकों को कैसे क्या सिखाया जाय यह भी उनके लिए एक जटिल समस्या थी। बापू को थोड़ी बहुत तमिल तो आती थी, किन्तु उन्हें उस समय तेलगु तो बिल्कुल ही नही आती थी। अतः बापू ने अपने वर्ग के बालकों को दो वर्गों में बांट दिया।

एक वर्ग तो ऐसा था जिसे पढ़ाने के लिये बापू उनकी मातृभाषा का प्रयोग करते थे तथा दूसरे वर्ग को बापू अंग्रेजी में पढ़ाते थे।

बापू को पढ़ाने के लिये जो वर्ग मिला था, उसमें सात वर्ष से लेकर बीस वर्ष तक के जवान लड़के और 13 वर्ष की आयु तक की लड़कियां पढ़ती थी। कुछ बालक तो ऐसे थे जो बहुत अधिक ऊधम मचाते थे। बापू ने लिखा है, कि मेरे लिये यह एक विकट समस्या हो गई थी, कि ऐसे लड़कों को कैसे पढ़ाया जाय? कुछ बालक ऐसे थे जिन्हें पुस्तकों से मानों वैर था। ऐसे बालकों को पढ़ाना तो एक भयंकर विपत्ति थी। शिक्षक ऐसे बालकों को आगे बढ़ाने के लिये क्या प्रयास करें। बापू को सोचना पड़ा। अतः बापू के शैक्षणिक प्रयोग प्रारम्भ हुए।

शिक्षण का मुख्य उद्देश्य था–बालकों के साथ मिलकर बैठना मित्र-भाव तथा सेवा-भाव सिखाना। शिक्षण रोचक वार्ताओं को सुनाकर अथवा पढ़कर सम्पूर्ण किया जाता था। इतिहास भूगोल का सामान्य ज्ञान कराने के साथ-साथ बापू उन्हें अंकगणित तथा लिखना आदि भी सिखाते थे। किन्तु पढ़ाई की मुख्य योजना पठन पर ही आश्रित थी। प्रार्थना के लिये भजनों आदि का भी अभ्यास कराया जाता था।

फार्म में विभिन्न धर्मावलम्बी निवास करते थे। अतः उनके बालकों को धार्मिक शिक्षा देना भी एक जटिल कार्य था। मुसलमान लोग कुरान, पारसी लोग अवेस्ता, खोजा लोग अपने पंथ की पोथी, ईसाई बाइबिल तथा हिन्दू लोग अपने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन अपने बालकों को कराना चाहते थे। बापू ने इस दुविधा का एक आसान हल ढूंढ निकाला। उन्होंने विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों से महत्वपूर्ण वर्णनों को छाट कर नोट्स तैयार कर लिये तथा उन्हीं नोट्स के आधार पर अध्ययन कार्य को गतिमान रखा।

धार्मिक शिक्षा का यह तरीका अत्यन्त प्रभावशाली रहा। बालकों में धार्मिक सहिष्णुता का विकास हुआ। एक दूसरे के धर्म तथा रीति-रिवाजों के प्रति उन्होंने उदार भाव रखना सीखा। भ्रातृत्व-भावना का विकास हुआ तथा वे एक दूसरे की सेवा करने में तत्पर हुए। सभ्य और उद्यमी बने। बापू ने लिखा है कि 'टाल्सटाय आश्रम के विचारमंथ एवं धार्मिक शैक्षणिक प्रयोगों का संस्मरण अत्यन्त मधुर है।' बापू का यह कथन प्रगट करता है कि उन्हें अपने प्रयोगों में अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई।

टाल्सटाय आश्रम में बापू का सहशिक्षा सम्बन्धी प्रयोग बहुत अधिक निर्भर था। लड़के और लड़कियां साथ-साथ पढ़ते, उठते-बैठते तथा स्वच्छन्द

विचरण (संघ के रूप में) करते थे। टालस्टाय आश्रम में बापू की श्रद्धा और हिम्मत पराकाष्ठा पर थी। बापू का प्रयोग भी बड़ा अनोखा था। वे बदमाश समझे जाने वाले लड़कों तथा सयानी लड़कियों को साथ-साथ नहाने भेज देते। झरना आश्रम से लगभग 500 गज दूर था। बापू ने लड़कों तथा लड़कियों को मर्यादा के सम्बन्ध में बहुत कुछ समझा सिखा दिया था फिर भी उनकी आखें सदैव उन बालक बालिकाओं के पीछे लगी रहती थीं। बालक बालिकाओं का इस प्रकार का मेल एक संघ के समान सुरक्षित था। कहीं पर भी उन्हें एकान्त उपलब्ध था ही नहीं और इस पर भी बापू अक्सर उनके साथ रहते थे। अतः किसी प्रकार की अप्रिय घटना की कोई संभावना ही नहीं थी।

बालक बालिकाओं के मातापिता का बापू में अखण्ड विश्वास था। अतः उन्होंने उन्हें प्रयोगों से नहीं रोका। किन्तु बापू के इस प्रयोग में कलंकरूपी एक घटना ऐसी घटी जिसने बापू को अत्यन्त दुखित और विचलित कर दिया। बापू को जब यह मालूम हुआ कि एक युवक ने दो लड़कियों के साथ मजाक की तो वे कांप उठे। बापू ने युवकों को समझाया और निश्चय किया कि इन बालिकाओं को कोई चिन्ह लगा देना चाहिये। जिससे हर एक युवक यह समझले कि इन बालाओं पर कुदृष्टि नहीं डाली जा सकती तथा लड़कियों को भी यह विश्वास हो जाय कि कोई उनकी पवित्रता को कलुषित नहीं कर पायेगा।

गांधीजी के लिये यह एक विचारणीय प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि इन बालाओं को कौनसा चिन्ह लगाया जाय कि वे अपने आप को सुरक्षित समझें और दूसरे भी उन्हें देख कर निर्विकार रहें। सारी रात बापू ने चिंतन में बिताई। सबेरे बापू ने उन लड़कियों को समझाते हुए यह सलाह दी कि वे अपने केश कटवा दें। बापू ने इसके लिये उन बालिकाओं की माताओं से भी स्वीकृति प्राप्त करली और स्वयं अपने हाथों से उन बालाओं के केश काट दिये। तत्पश्चात् उन्होंने कक्षा में इस कार्य का विश्लेषण करके सभी को समझा दिया। परिणाम आशा से अधिक सुन्दर रहा और बाद में कभी कोई ऐसी घटना नहीं हुई। बापू ने लिखा है कि "मेरा यह प्रयोग अनुकरणार्थ नहीं है। यदि कोई शिक्षक इसका अनुकरण करे तो वह भारी जोखिम अपने ऊपर ले लेगा, क्योंकि ऐसे प्रयोग करने के लिये अपने साथ कठिन तपश्चर्या का बल होना अत्यन्त आवश्यक है।" टालस्टाय आश्रम में बापू के प्रयोगों का परिणाम सुन्दर रहा। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह को एक लम्बे समय तक सफलतापूर्वक संचालित किया जा सका। टालस्टाय आश्रम की उपलब्धियों

था बापू ने भारत में प्रयोग किया और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को नवीन दिशा प्रदान की।

बापू के जीवन में प्रयोगों का अत्यधिक महत्व था। गांधीजी ने सत्य की साधना की, अहिंसा का आचरण किया, स्वराज्य के लिये युद्ध किया, धार्मिक एकता के लिये अथक प्रयास किया तथा शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये। स्वयं गांधीजी ने लिखा है मेरा जीवन क्या है—यह तो सत्य की प्रयोगशाला है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि सेवा धर्म है और सेवा में ही ईश्वर का साक्षात्कार है। सत्यतः बापू तो विराट थे। उनके जीवन के एक नहीं अनेक पहलू हैं। उनके व्यक्तित्व में विरोध और वैपरित्य का अनोखा संतुलन था। कल्पना और यथार्थ, आदर्श और व्यवहार, धर्म और राजनीति, विद्रोह और शान्ति, कठोरता और कोमलता, भावुकता और विवेक का ऐसा अदभुत मिश्रण अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। वस्तुतः वे महामानव थे और जीवन भर मानवता की नैष्ठिक सेवा मे रत रहे।

श्रीकृष्ण और गांधी : अद्भुत साम्य

—भगवानवल्लभ जोशी

अनेक बार इच्छा हुई है कि बापू के अन्तस्थल में योगेश्वर श्रीकृष्ण के दर्शन करूं। कई बार चाहा है कि, 'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्' का उद्घोष करने वाले पार्थ-मित्र केशव को गांधी में खोजूं ? सोचता हूं, क्या इसी वचन की सार्थकता के लिये करुणामय श्री हरि का प्राकट्य गांधी रूप में नहीं हुआ था ? लेकिन रुक जाता हूं। यह सोचकर कि कहां नटवर या नटखट बाल्यकाल और कहां दर्मीले बापू का बचपन। कहां शान्ति और कहां क्रांति ? कहां राजसी ठाट और कहां सरलता और सादगी ? कहां कृष्ण-सा छलिया और कहां बापू-सा सत्यवादी। कहां महाभारत का संग्राम और कहां अहिंसक सत्याग्रह। कहां सौन्दर्यपूर्ण यौवन और कहां एक अस्थी वृद्धावस्था ? कहां सोलह सहस्र रानियां और कहां एक पत्नी व्रत ?

फिर भी मन नहीं मानता इन विरोधाभासों को और विवश करता है यह विचारने के लिये कि मानवता के उद्धारक इन दिव्य देहधारियों में साम्य खोजूं। अवश्य ही बापू के दिव्य गुणों और श्रीकृष्ण के दैविक गुणों में एक अभिन्न स्थिति होनी ही चाहिये। क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक ही था पथ-भ्रष्ट-पीड़ित मनुष्यता को उसके मौलिक अधिकार दिलाना चाहे इन दोनों महामानवों के जीवन की घटनाएं भौतिक रूप से तत्सम प्रतीत न

होती हों, एवं देश-काल की भिन्नता में अटपटी लगती हों। लेकिन दार्शनिक दृष्टिबिन्दु से इन दोनों के जीवन में एकरूपता के दर्शन होते ही चाहिये।

स्वावलम्बन की भावना का दर्शन श्रीकृष्ण के जीवनचरित को हम करते हुए होता है। सम्पन्न नन्द के लाल कन्हैया का गायें चराने जाना तथा अनेक ग्वालों के होते हुए गौओं का दूध स्वयं अपने हाथों दुहना यह प्रकट करता है कि श्रीकृष्ण स्वयं अपना काम अपने हाथ से करने के कितने पक्षपाती थे। इसी तरह अपने देश का उत्पादन अपने ही देशवासियों के काम में लिये जाने की भावना से श्रीकृष्ण का गोपी ग्वालों को कंस के यहां दूध-दही-मक्खन ले जाने को रोकना और उसे धूल पर लुटवाना, क्या स्वदेशी आन्दोलन नहीं था?

समानता और सौहार्द्रता के दर्शन इन दोनों युग-पुरुषों के जीवन में पदे-पदे होते हैं। श्रीकृष्ण उच्चकुलीन थे। नन्द बाबा भी सम्पन्न थे। फिर भी साधारण ग्वालवालों से कृष्ण का अनन्य प्रेम और मैत्री थी। वह उनके साथ खेलते, साथ खाते और साथ ही हंसते-गाते थे। यहाँ तक कि एक दूसरे का जूठन भी बिना ऊंच नीच का ध्यान किये खा लेते थे। उनका जितना प्यार दीन हीन एवं दलितजनों से था उतना कुलीन कहे जाने वाले धनी एवं दंभियों से नहीं था। दान लीला, जिसने ब्रह्मा को भी आश्चर्य में डाल दिया, समानता एवं सौहार्द्रता का कैसा अच्छा उदाहरण है। दीन सुदामा की मैत्री और विदुर की भाजी का खाना यह सिद्ध करता है कि श्रीकृष्ण ने वर्ग-भेद दूर करने का और दीन-दलितों को समाज में बराबरी का स्थान देने का निरन्तर प्रयास किया था। यही भावना बापू के जीवन में भी सहज थी। बापू ने भी समाज में हेय दृष्टि से देखे जाने वाले हरिजन और अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों को अपना स्नेह दिया और उनके मन से हीन भावना को निकाल कर उन्हें समाज में सम्मान जनक मानवीय अधिकार दिलाये।

कंस गोरस को मगवाकर ब्रजवासियों को निर्बल बनाना चाहता था और अंग्रेज भारत के कच्चेमाल को विलायत ले जाकर भारतीयों को निर्धन करना चाहते थे। श्रीकृष्ण ने कंस से विद्रोह किया बापू ने अंग्रेजों की इस नीति का विरोध किया। कृष्ण का यह विरोध दान-लीला के नाम से जाना जाता है, बापू का यह विद्रोह स्वदेशी-आन्दोलन के नाम से पहचाना जाता है। विदेशी माल का बहिष्कार और ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन इसी मूल भावना से दोनों प्रेरित थे।

श्रीकृष्ण ने कंस को मारा, इसलिए कि वह अन्यायी, अत्याचारी, अधर्मी, आतंकवादी और दानवीय प्रकृति का था। लेकिन कंस को मार कर भी श्रीकृष्ण स्वयं राज्यासीन नहीं हुए अपितु उपयुक्त राज्याधिकारी उग्रसेन को उसका राज्य सौंप दिया।

बापू ने भी अन्यायी, अत्याचारी, दानवीय प्रकृति युक्त विदेशी शासकों को राष्ट्र से बहिष्कृत किया लेकिन स्वतंत्र भारत का शासकीय पद स्वयं नहीं लिया। बल्कि उसके उचित अधिकारी व्यक्तियों को सौंप दिया।

श्रीकृष्ण की सुधर्मा नामक सभा जनतंत्र की प्रतीक थी। यादवों की रीति नीति का विचार इसी सभा में जनतंत्रात्मक प्रणाली से ही किया जाता था और उसी जनतंत्र की सभा बापू की काग्रेस थी।

कृष्ण ने कभी भी अपने राज्य का विस्तार नहीं किया, किसी भी जीते हुए राज्य को अपने राज्य में नहीं मिलाया। कभी अपनी विचारधारा दूसरों पर नहीं थोपी। मनुष्यों को उनके मौलिक मानवीय अधिकार दिलाकर कृष्ण दूर अपनी द्वारिका में जा बैठे। यही थी बापू की विचारधारा। वे भी सभी को अपने अधिकार दिलाकर अपने आश्रम में जा बैठे। किसी की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया किसी पर अपने विचार जबरदस्ती नहीं थोपे।

कृष्ण ने दुष्टों का सहार किया तो बापू ने धृष्टता का। न कृष्ण को अमानुषीय राज्य प्रिय था न बापू को।

सेवक के रूप में श्रीकृष्ण का चरित्र हमें राजा युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में दिखाई देता है। जहां उन्होंने यज्ञशाला में आने वाले सभी अतिथियों के चरण धोने का काम अपने लिये चुना। जब कि राजसूय यज्ञ का होना कृष्ण की कृपा का ही फल था।

बापू का सम्पूर्ण जीवन सेवा ही में बीता। किसी भी महत्वपूर्ण सभा सम्मेलन में वे अतिथियों की झूठन उठाने का, रोगियों की सेवा करने का, स्थल की स्वच्छता आदि का काम अपने जिम्मे रखा करते थे। वह अपने आपको स्वयंसेवक के रूप में ही सभी के सामने प्रस्तुत करते थे। श्रीकृष्ण ने भी व्रज भूमि से लेकर महाभारत के युद्ध तक अपने आपको स्वयंसेवक के रूप ही में प्रस्तुत किया।

जैसे युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के लिये श्रीकृष्ण के नाम का सभी ने समर्थन किया उसी प्रकार आज के देश नव-निर्माण यज्ञ में सभी ने बापू की अग्रपूजा ही की और उन्हें राष्ट्रपिता कह कर अपनी श्रद्धा समर्पित की।

शिशुपाल और उसी की तरह के अनेक अत्याचारियों की गालियां श्रीकृष्ण प्रतिदिन हंसते हुए सुनते थे। उसी प्रकार अपने विरोधियों और विदेशियों की गालियां बापू दिन-रात सुना करते थे।

मगधराज जरासंध से पीड़ित दस हजार रियासतों ने जब अपनी मुक्ति के लिये श्रीकृष्ण से सहायता मांगी तो कृष्ण ने बिना हथियार उठाए ही सभी रियासतों को मुक्ति दिलाई। तो गांधीजी ने भी बिना हथियार उठाये भारत की अनेक रियासतों को स्वतंत्र करवाया। साथ ही भारत के आसपास के कई देशों को स्वतंत्रता के लिए जगाया।

जिस तरह श्रीकृष्ण ने द्रौपदी का चीरहरण होते समय उसके शील की रक्षा की उसी प्रकार बापू ने [illegible] भारतीय जनता का चीर अंग्रेजों द्वारा खींचे जाने पर उसके शील की रक्षा की।

महाभारत के युद्ध मे, संग्राम टालने की अथक चेष्टा करने पर भी जब संग्राम न टल सका तो श्रीकृष्ण ने उस युद्ध में तटस्थ द्रष्टा रह कर अपनी तटस्थता तथा अहिंसक मनः स्थिति का परिचय दिया और युद्ध में स्वयं शस्त्र न उठाने की घोषणा की।

कृष्ण चाहते तो दुर्योधन से मिलकर सम्मान और वैभव प्राप्त कर सकते थे। उसी तरह बापू चाहते तो अंग्रेजों से मिलकर सुख-वैभव प्राप्त कर सकते थे। लेकिन दोनों ने अन्याय का पक्ष नहीं लिया। युद्ध के दौरान भी श्रीकृष्ण घायलों और घोड़ों की सेवा सुश्रुषा मे रहे ओर आजादी के युद्ध के दौरान भी बापू हरिजनों और दुखी दर्दियों की सेवा मे लगे रहे।

श्रीकृष्ण धर्म के साथी थे। सत्यता के साथी थे, शान्ति और समानता के पक्षपाती थे। उन्होंने कभी शोषक का साथ नही दिया। वे शोषित की सहायता ही करते रहे। तभी तो वन मे भटकते पाण्डवों का साथ दिया। धर्म-कर्म में लगे ऋषि मुनियों का साथ दिया। बापू भी सदा शोषक के विरोधी रहे और शोषितों को अपने स्नेह सौजन्य से समर्थ करते रहे।

बापू युद्ध के हिमायती नही थे। उन्होंने अन्तिम समय तक समझौते ही से काम लिया। यही अवस्था श्रीकृष्ण की भी थी। वह भी युद्ध के हिमायती नही थे और अन्तिम स्थिति तक समझौते का प्रयत्न करते रहे थे। महाभारत के समय मे हस्तिनापुर में श्रीकृष्ण की यह भूमिका सर्वविदित है।

श्रीकृष्ण नही चाहते थे कि भाई-भाई में तकरार रहे और महाभारत का युद्ध हो। लेकिन वह विभाजन होना था। हुआ। गांधीजी भी नहीं चाहते थे कि हिन्दू मुस्लिम संघर्ष हो और देश मे खून खराबी हो; लेकिन विभाजन

होना था, हुआ और उसके दुष्परिणाम-स्वरूप जितना रक्तपात होना था वह भी हुआ ही।

तटस्थ नीति के अनुयायी श्रीकृष्ण ने महाभारत में शस्त्र-ग्रहण नहीं किया और दोनों पक्षों की उचित सहायता की। तो गांधीजी ने भी स्वतंत्रता संग्राम में शस्त्र नहीं उठाया। और विभाजन के समय पाक को न्योचित धन-राशि दिलाने के लिये अनशन किया।

बापू की आत्मा हिन्द-पाक विवाद जनित रक्त-क्रांति नहीं सह सकी और श्रीकृष्ण भी यादवों का आपसी द्वन्द्व-युद्ध नहीं सह सके। पशुओं की तरह लड़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम और यादवों को श्रीकृष्ण और गांधी दोनों नहीं सह सके और दोनों का महाप्रयाण एक ही स्थिति में हुआ। गांधीजी को गोडसे ने गोली मारदी और श्रीकृष्ण को निषाद ने तीर मार दिया। फिर भी दोनों ही अपने हत्यारे को हृदय से क्षमा कर गये।

श्रीकृष्ण के साथ उग्रनीति का अनुसरण करने वाले बलराम थे और बापू के साथ सरदार वल्लभ भाई पटेल।

कृष्ण की आध्यात्मिक संपदा के उत्तराधिकारी उद्धव रहे तो बापू की आध्यात्मिक संपदा के उत्तराधिकारी विनोबा हैं। श्रीकृष्ण के महाप्रयाण के बाद जैसे उनके दर्शन उद्धव में हो सकते थे, उसी तरह बापू के महाप्रयाण के पश्चात् भी उनके दर्शन विनोबा में हो सकते हैं।

श्रीकृष्ण का अमोघ अस्त्र था सुदर्शन चक्र तो बापू का अमोघ अस्त्र चरखा-चक्र रहा। श्रीकृष्ण की नीति का अनुसरण जैसे अर्जुन ने किया उसी तरह बापू की नितियों का अनुसरण जवाहरलाल नेहरू ने।

श्रीकृष्ण के दार्शनिक विचार गीता के रूप में प्रकट हुए तो बापू के दार्शनिक विचार ग्यारह सूत्रों के रूप में। श्रीकृष्णकालीन इतिहास और कृष्ण-चरित्र जिस तरह महाभारत में सुरक्षित है उसी तरह गांधी कालीन इतिहास और उनका चरित्र आत्मकथा में सुरक्षित है।

इस तरह श्रीकृष्ण और गांधी के जीवन के मूल उद्देश्य और कर्म-विधियों में कई समानताएं दृष्टिगत होती हैं।

दोनों ही लोकनायक थे। कुशल राजनीतिज्ञ थे। जन सेवक थे। शासन-व्यवस्था-विधाता थे। मानवता के हितैषी थे। मूल रूप में दोनों वसुधैव कुटुम्बकम के पक्षपाती थे। दोनों के जीवन का एक-एक क्षण महत्वपूर्ण और मूल्यवान रहा।

जिसने श्रीकृष्ण के वचनों का आदर नहीं किया उसी को विपत्ति का सामना करना पड़ा। उसी तरह आज जो भी बापू के वचनों का अनादर करते हैं उन्हें विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है।

ज्यों-ज्यों इन दोनों महापुरुषों के आध्यात्मिक व्यक्तित्व की गहराइयों में हम उतरते हैं त्यों-त्यों इनके जीवन दर्शन में एक अद्भुत साम्य के दर्शन होते हैं। जो अनेकों विरोधाभासों के उपरान्त भी मूल में किसी एक बिन्दु पर एक रूप दिखाई देते हैं।

दोनों की दृढ़ता, कर्मठता, सहिष्णुता, क्षमता तथा लोकप्रियता, नैतिकता, दीनबन्धुता, दयालुता, सेवा त्याग, आत्मविश्वास, स्वाभिमान, तप तथा नेतृत्व शक्ति में आश्चर्यजनक समानता है।

इसलिए सोचता हूँ कि दोनों ही अमानुषिक अत्याचारों से पीड़ित भारती माँ की पुकार सुनकर देश काल की परिस्थिति के अनुकूल पृथक-पृथक स्वरूप में अवतरित हुए। दीन-दुखी दलितों का उद्धार करने आये। आसुरी बन्धनों से मनुष्यता को मुक्ति दिलाने आये और अपने उद्देश्यों को पूरा कर अपने दिव्य कर्मों से मनुष्यों को मन्त्र-मुग्ध कर अमरत्व को प्राप्त हुए। अन्तर केवल यही था कि एक मोहन थे तो दूसरे मोहनदास।

मानवतावादी महात्मा गांधी

—विश्वेश्वर शर्मा

सब कुछ होने से पूर्व मनुष्य को मनुष्य होना चाहिए। मनुष्य, जिसमें सभी नैतिक-चारित्रिक, आध्यात्मिक गुणों का समुचित विकास हो। मनुष्य, जिसके शरीर का एक-एक अवयव सुप्रशिक्षित हो। मनुष्य, जिसकी चेतना जाग्रत हो। ऐसा मनुष्य, जिसके लिए कोई काम असम्भव न हो। ऐसा ही मनुष्य सुयोग्य नागरिक कहलाने के योग्य होता है। ऐसा ही मनुष्य संस्कृत होता है। ऐसे ही मनुष्य के हाथों में सभ्यता और संस्कृति का भार वहन करने की सामर्थ्य होता है। ऐसा ही मनुष्य किसी राष्ट्र की अमूल्य धरोहरों को सुरक्षित रखने का अधिकारी होता है और ऐसा ही मनुष्य उन महान् मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा बनाए रख सकता है जिसकी अपेक्षा किसी भी स्वतन्त्र राष्ट्र से की जा सकती है।

गांधीजी के शिक्षा-दर्शन की गहनतम गहराइयों में जो ज्योतिर्मय कल्पना नौकरशाही शिक्षा पद्धति के प्रतिकार स्वरूप उत्पन्न हुई थी उसका स्वरूप एक आदर्श मनुष्य ही था। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि देश की सर्वाधिक क्षति विदेशी शिक्षा पद्धति ने की है और नवीन भारत का निर्माण तब तक असम्भव है जब तक इस पाश्चात्य पूर्ण परतन्त्रतात्मक तथा-कथित शिक्षण पद्धति का आमूल परिवर्तन नहीं किया जाए। बुनियादी शिक्षा-जिसकी मूल कसौटी जाने किन आदर्शों की अभिव्यंजना में उभर कर रह गई-का मुख्य ध्येय एक आदर्श मनुष्य की निर्मिति ही था और इसके लिए वो

उपाय राष्ट्रपिता ने सुझाये थे वे उनके मौलिक प्रयोग थे जिनकी सत्य उनके द्वारा परीक्षित थी।

गांधीजी की रुचि एक आदर्श समाज निर्माण में थी। देश की स्वतंत्रता और जनतान्त्रिक सरकार की स्थापना भी उनके इस महान् उद्देश्य के साधन मात्र थे। उनका स्वप्न राजनीति का वह बौना स्वरूप नहीं था जिसके अधीन सत्ता के लिये मानवीय सामर्थ्य का उपयोग किया जाता है। उनका स्वप्न एक ऐसे सर्वोदय का स्वप्न था जिसमें मनुष्य अपनी अन्तर बाह्य शक्तियों से पूर्णतया परिचित रह कर अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार करने की क्षमता रखता है। वह एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना में अपनी दिव्य चेतना को व्यस्त किये थे जहां समस्त विचारों, व्यवहारों और मान्यताओं का मानवीकरण होकर एक नई चेतना की अभिव्यक्ति होती है, जो मनुष्य पर छाई हुई समस्त विभीषिकाओं, विड़म्बनाओं, विवशताओं को छिन्न-भिन्न करके मनुष्य को मनुष्य रूप में विकसित करने की ओर कृतसंकल्प रहती है। वह चाहते थे, जीवन के आरम्भ ही से मनुष्य को स्वरूप ज्ञान हो जाए, अपनी उपयोगिता का भान हो जाए। मानवीय अज्ञानता और अहंकार की गहरी कन्दराओं में दबी विशुद्ध ईश्वरीय ज्योति के दर्शन उन्हें हो गये थे और इसीलिए वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति-सामर्थ्य से मनुष्य मन पर व्याप्त उस कालिख को हटाने में लग गये थे जिसे धोये बिना मनुष्य का वह शुद्ध स्वरूप सामने नहीं आ सकता जिसकी परिभाषा ईश्वर है।

निश्चय ही अपने प्रयत्नों से, अपने प्रयोगों से, अपने मनन चिन्तन और कर्म से गांधीजी ने अवतारी मनुष्यों के प्राकट्य की भूमिका बनाई थी और इसके लिए मनुष्य के जन्म ही से उसे अमृत घुटकी दिये जाने की योजना उन्होंने तैयार की थी। जिससे स्वातन्त्र्योत्तर पीढ़ी सुसंस्कृत पीढ़ी के रूप में प्रकट हो सके। जिसके जीवन पर पारतन्त्र्य की एक भी स्याह रेखा विद्यमान न हो। जिसके लिए पाश्चात्य शिक्षा पद्धति दुर्भाग्यपूर्ण अतीत की एक विस्मरणीय स्मृति मात्र रह जाए। वह अब तक के खोजे गये विश्वस्त सामाजिक मूल्यों का एक ऐसा समन्वय चाहते थे जिसमें धर्म-राजनीति-दर्शन और साहित्य की सर्वोपरि उपलब्धियां समाहृति हो जाएं और मनुष्य अपने जीवन में उन आदर्शों को एकाकार करले जिनके अन्तर्गत जीवन की सार्थकता स्वयं सिद्ध हो।

आरम्भ से ही वह मनुष्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न कर देने के पक्षपाती थे। वह मनुष्य का उठान ही स्वावलम्बन की सामर्थ्य पर चाहते थे।

वह चाहते थे देश का हर व्यक्ति प्रयोगधर्मा हो, वे प्रयोग इहलौकिक-पारलौकिक सुखों को देने वाले भौतिक अध्यात्मिक प्रयोग न होकर विशुद्ध आन्तरिक प्रयोग थे जिनका लक्ष्य स्वयं मनुष्य द्वारा मनुष्य की खोज था। जिसका फल एक ऐसा संतुलित जीवन था जिसमें धर्म-काम-मोक्ष की क्रमिक प्राप्ति होती है। उनकी आंखों मे राम-राज्य का कुछ ऐसा ही विराट चित्र था जहां हर व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों के प्रति पूर्ण सजग और सचेष्ट रहता है। जो अपने मनुष्य जीवन की उपयोगिता को ठीक तरह आत्मसात किये होता है। जो उन उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रति सतत् प्रयत्नशील रहता है जिसके लिए उसे प्रकृति द्वारा मनुष्य जीवन प्रदान किया गया है।

एक आदर्श मनुष्य के निर्माण के लिए, एक सर्वांग विकसित व्यक्तित्व की उपलब्धि के लिए एक सुनियोजित राष्ट्रीय इकाई की स्थापना के लिए, एक संस्कृत शिक्षा व्यवस्था को बुनियादी आवश्यकता को समझकर ही उन्होंने नवीन भारत का सुन्दर चित्र एक नवीन सुन्दर शिक्षा पद्धति में देखना आरम्भ किया था और उस शिक्षा पद्धति के एक-एक अणु को अपने जीवन पर किये गये गम्भीर प्रयोगों के महत् निष्कर्ष देकर अनुप्राणित किया था। उन्होंने जीवन के आरम्भ ही से मनुष्य को इन्द्रिय-निग्रह, सत्य, अहिंसा सहयोग, सहिष्णुता और आध्यात्म के सूक्ष्म सूत्र पकडवाने का निश्चय किया था। उन्होंने चाहा था। मानवीय स्वभाव से वे सारे दुर्गुण निकाल बाहर किये जाएं जो प्रकृति की इस अनुपम आकृति का मौलिक रूप बिगाड़ कर उसे एक पशु, पिशाच, अथवा किसी अतिमानवीय संज्ञा से सम्बोधित करने पर बाध्य करते हैं। इसीलिए उन्होंने शिक्षा में सद्गुणों की वृद्धि पर जोर दिया था। इसीलिए उन्होंने कर्म ज्ञान का शिक्षा मे समन्वय किया था। इसीलिए उन्होंने विज्ञान और कला का समानान्तर सहजीकरण सोचा था ताकि चिन्तन और प्रयोग के मार्ग पर मनुष्य भटक न जाए। इसके लिए उन्होंने हर आदर्श का, हर क्रिया का, हर विचार का शुद्धिकरण किया और एक ऐसी राष्ट्रीय सामर्थ्य को जगाने का शखनाद किया जिसमे विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के सद्गुणों का एक समन्वित स्वरूप उभर आता है। जहां से एक नई विश्व सभ्यता का उदय होता है। जहां, अनेकानेक मतमतान्तरों से ऊपर आकर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को स्वाभाविक दृष्टि से देखता है। यह वह बिन्दु है जहां आकर आदमी का आदमी के प्रति अजनबीपन नष्ट हो जाता है और नई विश्व मानवीय संस्कृति का आरम्भ होता है जो स्वतन्त्र-चेता मनुष्य की प्राथमिक योग्यता है। उनका विचार था कि वे एततकालीन विश्व मानव सभ्यता के सम्मुख स्वतन्त्र भारत को एक अनुकरणीय आदर्श उदाहरण के रूप

गांधी दर्शन बनाम जीवन शिक्षा

—राजशेखर व्यास

दृश्य जगत के समस्त व्यापारों का अपने अन्तर्जगत के साथ तादात्म्य स्थापित कर स्वयं की स्वतंत्र अनुभूति के आधार पर जीवन संग्राम में सामने आने वाली विविध समस्याओं के प्रत्येक पहलू का निश्चित और सही समाधान ढूँढ़ने को चिन्तन प्रक्रिया को दर्शन की संज्ञा दी जाती है। लेकिन वह प्रक्रिया तब तक समाज के लिये उपयोगी नहीं बन पाती जब तक कि उसमें जीवन को समझने-समझाने तथा उसके भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों ही पक्षों का एक साथ समायोजन नहीं हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जबतक वह प्रक्रिया एकपक्षीय रहती है तब तक या तो आत्म-दृष्टि (आध्यात्मिक पक्ष) तक सीमित रहकर वह समाज के किसी विशिष्ट वर्ग के विचार विलास की सामग्री बनी रह जाती है अथवा वस्तु-दृष्टि (भौतिक पक्ष) की परिधि मे घिरी रहकर वह जीवन की विविध चुनौतियों के उत्तर ढूँढ सकने में असमर्थ रहती है। इसके विपरीत जहाँ जीवन को दोनों प्रकार की दृष्टियों आत्म दृष्टि और वस्तु दृष्टि, से एक साथ देखा जाकर पदार्थ-ससार के साथ मस्तिष्क और आत्मा का प्रयोगयुक्त सामञ्जस्य स्थापित होता है वहां सही अर्थों में जीवन दर्शन की सृष्टि होती है और समाज सही दिशाबोध प्राप्त करता है।

यद्यपि इस प्रकार के समन्वित जीवनदर्शन का सृजन और उसके . .., व्यावहारिक दार्शनिक का आविर्भाव यदा-कदा ही संभव हो पाता

है तथापि देश-काल की सीमित परिधि से परे रहते हुए, चिरन्तन सत्य के अन्वेषण एवं मानवता और उसके कल्याण की सही दिशा की खोज मे अनवरत प्रयत्नशील रहते हुए, ऐसा दार्शनिक जीवन के कुछ ऐसे शाश्वत मूल्यों का उद्घाटन कर देता है जो उसके जीवन काल तक ही नही प्रत्युत युगों-युगों तक सम्पूर्ण मानव-जाति का सही मार्गदर्शन करते रहते हैं। प्रत्यक्ष रूप में ऐसा दार्शनिक भले ह। शिक्षा और शिक्षाशास्त्र से सम्बन्धित दिखाई नही पड़ता हो किन्तु परोक्ष रू। में उसके जीवन का प्रत्येक पहलू तथा उसके चिन्तन का प्रत्येक अंश शिक्षा और शिक्षाशास्त्र का महत्वपूर्ण आधार बन जाता है। और समाज के लिये उसका जीवन और जीवनदर्शन, जीवनशिक्षा के रूप में साकार हो उठता है।

जीवनदर्शन और जीवनशिक्षा के इस समन्वित स्वरूप के सन्दर्भ में कदाचित यह कहना उपयुक्त ही होगा कि आज से ठीक सौ वर्षों पूर्व भारत-भूमि ने अपने जगद्गुरु पद की प्रतिष्ठा को बनाये रखने वाले कर्म समर्पित दार्शनिक पुत्रों की परम्परा में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के रूप मे एक ऐसे युग-पुरुष को जन्म दिया जिसने जीवन के दोनों पक्षो (भौतिक और आध्यात्मिक) का संतुलित विचार रखते हुए पहिले अपनी जिन्दगी को जीया और फिर केवल भारत वर्ष के लोगों को ही नहीं, सम्पूर्ण संसार के लोगों को उसी तरह जीवन जीने के समन्वित जीवनदर्शन-जीवनशिक्षा का अमर सन्देश प्रदान किया। वस्तुतः महात्मा गाँधी का सारा जीवन, चाहे प्रत्यक्ष मे वह राजनीति के झमेलों में उलझा-उलझा सा दिखाई क्यो न देता हो अपने वास्तविक रूप मे एक महान कर्मनिष्ठ दार्शनिक और व्यवहारिक शिक्षा शास्त्री के रूप मे प्रकट होता है। उनका पूरा चिन्तन, चाहे स्वतन्त्रता आन्दोलन, समाज सुधार, धर्म सुधार अथवा प्रकट रूप मे शिक्षा की विधिविधाओं और प्रणालियों के निरूपण मे जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षो से ही सम्बद्ध क्यों न दिखाई देता हो, अपने समग्र रूप मे, उन्ही के शब्दों में, 'अपने ढग पर सनातन सत्यों को दैनिक जीवन और समस्याओ पर लागू करने का प्रयास' दिखाई पड़ता है। उनका यह प्रयास यद्यपि उनके लिये प्रयास ही रहा हो लेकिन समस्त मानव-जाति के लिये तो वह जीवन और मानवता के मौलिक सिद्धान्तों को समझने और समझाने के विविध कार्यक्रमों और पद्धतियो के रूप मे जीवन जीने की शिक्षा का पाठ्यक्रम और पाठ्य-वस्तु बन गया है।

महात्मा गांधी कक्षा कक्ष मे नियत संख्या में विद्यार्थियों को किसी निश्चित विषय का ज्ञान कराने वाले शिक्षक तो नही थे लेकिन संसार की इस विशाल कक्षा में मानव जाति के कोटि कोटि विद्यार्थियों को कर्त्तव्य-कर्म

(भौतिक विकास) तथा संयम-सदाचार (आध्यात्मिक विकास) के महत्व विषयों के सत्य ज्ञान का अवबोधन कराने वाले महान शिक्षा शास्त्री थे। यहाँ उनके शिक्षण का क्षेत्र इतना विशाल था वहाँ उनका शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण और अधिक व्यापक था। उनके विचार में विद्यालय की चारदीवारी के सीमित दायरे में बालक के मस्तिष्क पर किन्हीं विशिष्ट विषयों के ज्ञान के बोझ को लादना वास्तविक शिक्षा नहीं बल्कि बालक अथवा व्यक्ति के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में अन्तर्निहित सर्वोत्तम का उद्घाटन कर स्वयं की शक्तियों का भान करा देना ही सच्ची शिक्षा है। ऐसा भान हो जाने पर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास संभव होता है। इस दृष्टिकोण में निहित भावना को वैसे ही स्वीकार कर तनिक गहराई से व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के पीछे छिपे जीवन शिक्षा के सन्देश को समझने के लिये इस दृष्टिकोण का विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि जब व्यक्ति को उचित शिक्षा के माध्यम से अपनी शारीरिक शक्ति के सर्वोत्तम गुण, श्रम, अपनी बौद्धिक शक्ति के सर्वोत्तम गुण कर्म-निर्णय तथा अपनी आत्मिक शक्ति के सर्वोत्तम गुण ज्ञान (नैतिकता) की सही प्रतीति हो जाती है तो कोई चौथी वस्तु ऐसी शेष नहीं रह जाती जिसके ज्ञान के अभाव में उसके व्यक्तित्व का सही विकास अवरुद्ध हो सके। तात्पर्य यह है कि अपने शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के स्वाभाविक गुणधर्मों और शक्तियों की प्रत्यक्ष प्रतीति हो जाने पर स्वतः मनुष्य स्वयं ही 'जीवन से जीवन जीने की शिक्षा' प्राप्त कर लेता है। कारण कि स्वयं में निहित श्रम, कर्म और ज्ञान की विद्युतशक्ति से ऊर्जित होने पर व्यक्ति केवल मात्र साक्षर ही नहीं बनता, वह केवल मात्र अपनी उदर पूर्ति का आधार ही प्राप्त नहीं करता बल्कि उसके व्यक्तित्व का श्रम पक्ष जागृत होकर उसे स्वावलम्बन की शक्ति प्रदान करता है; उसके व्यक्तित्व का कर्म पक्ष जागृत होकर उसे कर्तव्याकर्तव्य के बोध की अनुभूति प्रदान करता है; उसके व्यक्तित्व का स्व और आत्मपक्ष जागृत होकर उसे आत्मगौरव और जीवन के नैतिक मूल्यों को समझने का ज्ञान प्रदान करता है।

महात्मा गांधी का यह जीवनदर्शन-जीवनशिक्षा, केवल मात्र विचार विलास की सामग्री ही नहीं रहा। इस दार्शनिक चिन्तन को जीवन पद्धति में उतारने के लिये उसके सांगोपांग व्यावहारिक पक्ष का भी स्वयं गांधीजी के द्वारा निरूपण किया गया। शिक्षा की अपनी नयी योजना में पहिले बुनियादी शिक्षा और बाद में पूर्व बुनियादी और उत्तर बुनियादी के समायोजन के परिणामस्वरूप अपने विकसित रूप में नवीन शिक्षा अथवा नयी तालीम महात्मा गांधी की जीवन शिक्षा के व्यवहारिक दर्शन का क्रियात्मक पहलू है।

अपनी नयी तालीम की योजना में शिक्षा की विविध समस्याओं और पक्षों का क्रियात्मक हल स्पष्ट करते हुए महात्माजी ने श्रम और किसी उत्पादक शिल्प को शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया है। इसके पीछे भी उनका मन्तव्य व्यक्ति को भावी जीवनसंग्राम के लिये तैयार कर देने का रहा है। श्रम के गौरव का बोध प्राप्त कर बालक अपने मस्तिष्क को स्वस्थ बनाये रखकर अपने उत्तरकालीन जीवन के उत्तरदायित्वों के निर्वाह और समय की परिस्थितियों की चुनौतियों का सामना करने के लिये तैयार हो जाता है। उत्पादक शिल्प का कौशल अर्जित कर बालक भविष्य में जीवन निर्वाह के प्रश्न का स्थाई हल प्राप्त कर लेता है। इस तरह किसी भी प्रकार के श्रम के लिये अभ्यस्त शरीर को जब उत्पादक शिल्प में प्रशिक्षित मस्तिष्क का सक्रिय सहयोग प्राप्त हो जाता है तो व्यक्ति स्वावलम्बी बनकर जीवन यापन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता प्राप्त कर लेता है और स्वतन्त्र जीवन जीने के स्व अर्जित अधिकार से सम्पन्न रहता है। इतना ही नहीं वह अपनी उक्त क्षमता और अधिकार का अनुशासनबद्ध उपयोग करता हुआ जीवन में भौतिक विकास की चरम सीमा तक भी पहुंच सकता है। लेकिन चरम भौतिक विकास ही महात्माजी के मत से जीवन का अन्तिम लक्ष्य और सत्य नहीं है। उनके विचार में कोई भी व्यक्ति व्यवसाय में कितना ही पुरुषार्थी क्यों न बन जाय, वह तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उसमें आध्यात्मिक संस्कारों का उदय नहीं हो जाता और उन्हें अपने आचरण में नहीं उतार पाता। आध्यात्मिक संस्कारों से शून्य व्यक्ति कर्तव्य कर्म के साथ संयम सदाचार के उपयुक्त सामञ्जस्य के अभाव में जीवन जीने के उचित व्यवहारों की उपेक्षा करता रहता है। अतः व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि सांसारिक संस्कारों, राजनीति आर्थिक जीवन, सामाजिक जीवनयापन के तरीके, साथ-साथ आध्यात्मिक संस्कारों—चरित्र, नैतिकता, सत्य, अहिंसा, परोपकार, श्रद्धा, विश्वास आदि का भी समुचित विकास हो।

अपनी नई तालीम की व्यवस्था में गांधीजी ने इस हेतु की पूर्ति का साधन भी उद्योग केन्द्रित शिक्षा को ही माना है। उनके अनुसार 'उद्योग केन्द्रित शिक्षा मस्तिष्क का अनुशासनबद्ध विकास करती है तथा बालक की बौद्धिक शक्ति को सबल प्रदान कर परोक्ष रूप में उसकी आध्यात्मिक शक्ति की रक्षा करती है।' शिक्षण की समवाय पद्धति इसका आधार है। साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, कला, व्यायाम आदि विषयों का उद्योग के साथ सह सम्बन्ध स्थापित कर उत्पन्न की गई शैक्षणिक परिस्थिति

कर्मेन्द्रियों की क्रियाशीलता के साथ ज्ञानेन्द्रियों को उनका आवश्यक आहार प्रदान करती है। इससे व्यक्ति कर्म के साथ-साथ आत्मानुशासन, आत्मसुधार तथा सदाचरण, सद्व्यवहार आदि नैतिक संस्कारों की अनुभूति प्राप्त करता है। व्यापक रूप में यह अनुभूति व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सहायक बनती हुई धीरे-धीरे आत्मोन्नति के रहस्यों को प्रकट करती हुई तथा व्यक्ति के समग्र सर्वोत्तम का उद्घाटन कर, उसमें सत्पुरुषत्व की उदात्त भावना जागृत करती है। सत्पुरुष बनकर जीवन जीने की भावना और क्षमता का व्यक्तित्व में विकास हो जाने पर व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में कोई वस्तु शेष नहीं रहती और व्यक्ति जीवन जीने की सम्पूर्ण पद्धति से परिचित रहता है जिसमें स्वयं और अन्यों की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए व्यक्ति आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होता रहता है। परम पूजनीय गांधीजी का जीवन और दर्शन इस सर्वसुखद जीवन पद्धति को समझने का अपूर्व साधन है। गांधी दर्शन के इस महत्व को समझ कर ही चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहा था कि महात्मा गांधी का जीवन दर्शन, 'जीवन के – समग्र जीवन – के सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों का विचार करने वाली और प्रत्येक प्रश्न का अपने ढंग से निश्चित उत्तर बताने वाली एक ऐसी सार्वभौम जीवन पद्धति है, एक ऐसी सर्वांग सुन्दर सम्पूर्ण और अर्थपूर्ण इमारत है जिसकी एक ईंट या कंकरी भी आप कहीं से हिला या निकाल नहीं सकते।' आवश्यकता इस इमारत को हिलाने की नहीं, उसके उपभोग की है। अभी तक इस इमारत को हम बाहर से देखभर रहे हैं, उसका सार्थक उपयोग नहीं कर रहे। यदि गांधी शताब्दी के इस पुनीत अवसर पर सम्पूर्ण भारत का समाज नहीं तो भारत का शिक्षा जगत ही इस इमारत के सप्रयोजन, सदुपयोग कर लेने का दृढ संकल्प कर लेता है तो भारतवर्ष के लिये किये गये महात्मा गांधी के जीवनउत्सर्ग के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धान्जलि होगी।

यदि गांधी शिक्षक होते

—शशिबाला शर्मा

भारत का यह परम सौभाग्य रहा है कि जब-जब इसकी नैया तूफान के थपेड़ों से डगमगाई किसी न किसी महान आत्मा ने अवतरित होकर, निराश्रित जनता के मन में पैगम्बर या अवतार बन कर एक कुशल और सिद्धहस्त माझी की भांति उस नाव को भयानक तूफान के थपेटों से निकाल कर किनारे लगाया है। ऐसा ही एक सक्रान्ति काल था, जब अंग्रेजी साम्राज्यवाद की चक्की में पिसती कराहती जनता की आहत पुकारों को सुनकर एक अप्रतिम विभूति ने त्यागी, विरागी, दुनिया से निरोल फकीर, दुखियों के हमदर्द, शबरी के राम और बच्चों के बापू के ममतामय परिवेश में काठियावाड़ की भूमि में जन्म लेकर उसको धन्य बनाया। 2 अक्टूबर 1869 का वह स्वर्णिम प्रभात एक नई चमक, एक नया सन्देश लेकर आया। गगन गुंजायमान हो उठा, दिशाएँ मंगल निनाद से भर उठी सुप्त जगत ने करवट ली और तन्द्रिल नेत्रों से देखा भारतीय क्षितिज पर एक अदभुत प्रकाश पुंज। अंग्रेजी राज्य की जड़ें उसी दिन से हिलने लगीं, गौराङ्ग महाप्रभुओं की शक्ति क्षीण होने लगी, भारत माँ की गुलामी की जंजीरें टूटने के लिये कसमसाने लगी और आखिर इसी संत की छत्रछाया में वर्षों से देखा गया चालीस करोड़ भारतवासियों का स्वप्न पूरा होकर रहा।

कौन नही जानता कि विद्यार्थी के रूप मे अधिक मेधावी न होने पर भी मास्टर के बार-बार इशारा करने पर नकल न करने वाले इस एक सीधे से छात्र ने आज के विद्यार्थी समाज को महान नैतिक प्रेरणा दी है।

भांग, मदिरा, जुआ सभी के मोहपाश में फंसकर भी, काजल की कोठरी में से रंचमात्र दाग भर लगवा कर स्वप्रयास से निकल आने वाले इस नवयुवक का साहस आज के अनेकों पथ भूले, पथभ्रष्ट, देश के कर्णधारों के लिये क्या किसी महात्मा के उपदेशों से कम अनुकरणीय है। शायद नहीं।

जीवन की सुविधाओं को कौन नकारता है ? कितने ऐसे हैं, जो सुखों के स्वर्णिम संसार पर लात मार कर अभाव कष्ट और पर सेवा के कठिन मार्ग को स्वेच्छा से अपना लेते हैं, देश भक्ति के इस जनून को कौन समझ सकता है जिसके वशीभूत होकर इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी पास करके आने वाले युवक ने भारत में वकालत कर धन कमाने की अपेक्षा गोरी सरकार के अत्याचार से त्रस्त भारतीयों को मुक्ति दिलाने के लिये दक्षिण अफ्रीका में लोक सेवा की भावना को लेकर वकालत करना अधिक अच्छा समझा। कौन समझ करेगा उसके त्याग की जिसने बिहार के भीतिहरवा गांव की जर्जरवस्त्रा बुढ़िया का अभाव देखकर आगामी जीवन में मात्र लंगोटी पहनने का व्रत इसलिये ले लिया था क्योंकि जब तक उनकी भारत माँ की देह वस्त्रों से नहीं ढंक जाती तब तक उन्हें तीन-तीन वस्त्र पहिनने का क्या अधिकार है।

कोरे उपदेशक बहुत हुए हैं, होते रहते हैं, और होते रहेंगे। गांधीजी की वाणी कर्मों की वाणी थी शब्दों की नहीं वह स्वयं आचरण करते थे कहते नहीं थे। युद्ध-प्रिय जाति के नवयुवकों के सामने अहिंसा के सन्देश का स्पष्टीकरण उन्होंने इस प्रकार किया था "अहिंसा निर्बल का नहीं वरन् अत्यन्त शक्तिशाली का अस्त्र है शक्ति का अर्थ केवल शारीरिक बल नहीं है, एक अहिंसक में शारीरिक बल का होना आवश्यक नहीं है परन्तु बलवान हृदय का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।"

सत्य की खातिर उन्होंने अंग्रेजी सरकार का अपमान भी सहा और जिन्दगी के कितने ही सुनहरे दिवस जेल के सींखचों में गुजारे। सत्य के लिये उनका आग्रह ही सत्याग्रह बन कर जन-जन की पुकार बन गया। अहिंसा के समर्थक उस देवदूत ने अपना अहित चाहने वालों को भी सदा क्षमा भाव से देखा। 1906 में दक्षिण अफ्रीका में मीर आलम नामक पठान के प्राणघाती वार को झेलकर भी इस महात्मा ने मित्रों के परामर्श पर उस पर दावा करने से इन्कार कर दिया था और 30 जनवरी 1948 को बिरला भवन से निकलते हुए गोडसे की गोली खाकर भी इस मनस्वी ने केवल 'हे राम' का उच्चारण किया था। अपने लिये तो सभी जीते हैं लेकिन जीवन वही सार्थक

है जो दूसरों के लिये जिया जाये, हरिजनों को गले लगाने वाला, खुद उनके साथ हरिजन बन जाने वाला, कोढ़ियों की भी अपने हाथों से सेवा-सुश्रुषा करने वाला, नमक कानून तोड़ने वाला, गांव-गांव में पैदल यात्रा करके अलख जगाने वाला यह अनोखा इंसान जितनी व्यस्त जीवन चर्या बिताता था वह आज के नवयुवक वर्ग के लिये स्पृहणीय होनी चाहिये।

देश सेवा और देश की गौरव रक्षा का भार उन्होंने स्वयं भी आयुपर्यन्त वहन किया व दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करते थे। एक बार बर्मिंघम में डा. परधी और उनकी पत्नी के निमन्त्रण पर एकत्रित हुए भारतीयों के बीच उन्होंने कहा था 'आप इंग्लैण्ड में रहने वाले भारतीयों पर भारत रक्षा का भार है, अतः आप सतर्क रहकर कर्म करें।" उपस्थित सज्जनों में से एक के यह पूछने पर कि हम भारत सेवा किस प्रकार कर सकते हैं ? उन्होंने कहा था 'आप अपनी बुद्धि और चातुर्य को पैसा कमाने में लगाने की बजाय देश की सेवा में लगावें।'

विचार उठता है गांधीजी शिक्षक होते तो कितना अच्छा होता, वह विद्यालय धन्य हो जाता जिसमें वे अध्यापन करते पर यह समझना भी भूल होगी कि गांधीजी शिक्षक नहीं थे, वे पूरी मानवता के शिक्षक थे। घूम-घूम कर हर भारतवासी के हृदय में स्वतन्त्रता की ज्योति जलाने वाला यह तेज पुंज-ऋषि किस कुर्सीधारी आचार्य से अधिक नहीं था ? उनका विचार था शिक्षा का प्रारम्भ विद्यालय में नहीं बल्कि विद्यालय छोड़ने के बाद होता है, वे चाहते थे कि विद्यार्थी स्वप्रयास से व्यवहारिक जीवन से ही शिक्षा ग्रहण कर चरित्र का निर्माण करें।

मैडम मॉन्टेसरी ने गांधीजी से हुई एक भेंट के उपरांत लिखा था "गांधीजी मुझे तो मनुष्य की अपेक्षा आत्मा रूप अधिक प्रतीत होते हैं, उनकी विनम्रता, उनकी मधुरता ऐसी है मानो समस्त संसार में कठोरता नाम की वस्तु है ही नहीं। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं जिन शिक्षकों को तैयार कर कर रही हूं यह माननीय व्यक्ति उन्हें बहुत सहायता पहुँच सकेंगे।" मैडम मॉन्टेसरी और उनकी पाठशाला के बच्चों से प्रभावित होकर बापू ने कहा था - "भारत के झोंपड़ों में रहने वाले बालकों को सच्ची और शक्तिशाली शिक्षा देने का प्रश्न हमारे सामने है, हमारे पास कोई साधन नहीं है।"

गांधीजी बालकों में मौन का गुण आवश्यक थे। उनके विचार में भारत के लिए ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता थी, जो बालकों के मानस को समझें, उनमें जो विशेषता हो उनका अभ्यास करें और फिर उन्हें उनके

आत्म-सम्मान के भरोसे छोड़कर अपने ही शक्ति साधनों पर निर्भर बना देवें। यदि शिक्षक स्वयं नम्र बने तो जीवन का सबसे बड़ा पाठ वह विद्वानों से नहीं बल्कि बालकों से सीखेगा। शिक्षा में मानवीय गुणों को वे प्राथमिकता देते थे तथा शिक्षा की अनिवार्यता और आवश्यकता जितनी उनके विचार में धनवान और साधन सम्पन्न लोगों के लिए थी उससे अधिक गरीब और साधन-हीन समाज के लिए थी क्योंकि दुनिया में प्रेम और शांति का संदेश भी बालकों के द्वारा ही फैलाया जा सकता है।

आने वाली पीढ़ियों के लिए यह जहां आश्चर्य, कौतूहल और श्रद्धा की बात रहेगी वहां उनके मस्तक श्रद्धा से भी झुका करेंगे कि साधारण से व्यक्तित्व का स्वामी लंगोटीधारी, साधु के वेश में जहाँ एक ओर भारत के निम्नतर वर्ग से प्रेमालिंगन कर सकता था वहां इंगलैण्ड की लार्ड सभा में बड़े-बड़े अधिकारियों से हाथ मिलाकर उनको गौरवान्वित भी करता था और गोलमेज परिषदों में अपने देश का प्रतिनिधित्व भी करता था।

वर्तमान युग के इस वामन को भविष्य का आभास हो चुका था। करोड़ों जनता के इस बेताज के बादशाह ने भारत की नस को पहचाना था और पहचानकर भविष्य में भारत के विद्यार्थियों के लिए उस बुनियादी शिक्षा की कल्पना की थी जो उनके लिए शिक्षाप्रद होने के साथ साथ जीवन-निर्वाह के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सके। गांधीजी जानते थे कि भारत गावों का देश है जहा श्रमिक वर्ग की प्रधानता है कोरा पुस्तकीय ज्ञान केवल लार्ड मैकोले के क्लर्क पैदा कर सकता है भारत जैसे गरीब देश को खुशहाल नहीं बना सकता, अतः वे अपने देश मे ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहते थे जो विद्यार्थियो को स्वावलम्बी और श्रमजीवी बना सके। किन्तु उनका यह स्वप्न पूरी तरह सत्य नही हो पाया। वर्तमान समय में हमारे देश में एसी शालाओं की संख्या अति न्यून है जो बहुउद्देशीय हैं अर्थात विद्यार्थियों को सभी प्रकार के लघु उद्योगों की शिक्षा प्रदान करती है।

गांधीजी का जीवन चरित्र एक खुली हुई किताब है एक ऐसी किताब जिसका एक-एक अक्षर, एक-एक वाक्य अनमोल है, प्रेरणादायक है। कोई आदमी जन्म से ही महान पैदा नहीं होता, न ही लादी हुई महानता चिर-स्थायी होती है, महानता मिलती है कुर्बानी से, त्याग से, किसी भी बड़े हित के लिए अपने को अर्पित कर देने से। इतिहास साक्षी है कि जिन्होंने दूसरों के जीवन की तमसाछन्न राहो को आलोकित करने के लिए अपने जीवन को मोमबत्ती की भांति तिल-तिलकर जलाया है उन्ही का नाम हर पृष्ठ पर

रवर्णाक्षरों में अंकित हुआ है और उन्हीं की पावन स्मृति पत्थर की लकीर की भांति जन-जन के हृदय पर अमिट हो गई है।

बापू ने आत्मशुद्धि पर बहुत जोर दिया। आत्मशुद्धि के लिए मन के विकारों को जीतना परमावश्यक है। स्वेच्छा से अपने को सबसे नीचा रखकर ही मानव स्वयं को ऊंचा उठा सकता है। नम्रता की पराकाष्ठा ही अहिंसा है, वह महामानव जीवनपर्यन्त सचमुच ऐसा ही रहा। आज सत्य और अहिंसा उनके नाम के पर्याय बन गये हैं। उनका पार्थिव शरीर चला गया पर अपार्थिव आत्मा अमर है। उनकी भास्वर स्मृति के साथ अंग्रेजी गीत की निम्न पंक्तियों की कितनी साम्यता है :—

"O Death, where is thy sting, Where grave thy victory ?" (मृत्यु कहां है तेरा डंक ? कब्र कहां है तेरी विजय ?

गांधी, वर्तमान संकट और शिक्षा

—राधाकृष्ण शास्त्री

"मैंने यह सुझाने का साहस किया है कि शिक्षा को हमें स्वावलम्बी बना देना चाहिये फिर भले ही लोग मुझे यह कहें कि मेरे अन्दर किसी रचनात्मक कार्य की योग्यता नहीं है। उसके स्वावलम्बी होने को ही मैं उसकी सफलता की कसौटी मानूंगा।"[1]

—महात्मा गांधी

वर्तमान संकट :

शिक्षा का उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास करना है जिसमें उसके जीवन के शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक पक्ष निहित हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा का स्वावलम्बन पर जोर भी होना चाहिये एवं उसमें इतनी क्षमता होनी चाहिये कि वह देश और काल की उभरती हुई समस्याओं का समय-समय पर समाधान ढूंढ सके। जिस राज में ऐसी संतुलित शिक्षा पद्धति की व्यवस्था हो वह संकट के बादलों से घिरा नहीं रह सकता।

यह दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाईस वर्ष उपरान्त भी भारत में आज शिक्षा से संबन्धित एक राष्ट्रीय नीति का निर्माण नहीं हो पाया है। विदेशियों द्वारा दी गई शिक्षा नीति में आमूलचूल परिवर्तन करने की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया है। यही कारण है कि आज शिक्षित बेरोजगारों की एक महती भीड़ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, युवकों में भयंकर

१. महात्मा गांधी–बुनियादी शिक्षा : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

असंतोष व्याप्त है, विद्यार्थी संवैधानिक रास्तों में आस्था खोकर हिंसा की ओर उन्मुख है, तोड़फोड़ सामाजिक जीवन का एक स्वीकृत सिद्धांत बनता जा रहा है। संक्षेप में, सामाजिक परिवर्तन के तीन रास्तों—करुणा, कानून एव कत्ल में आज का शिक्षित नवयुवक चयन करता अधिक कठिन नहीं समझता और वह कत्ल के अप्रजातांत्रिक एवं अमानवीय रास्ते को अपनाना अनुचित नहीं समझ रहा है जो कि इस राष्ट्र की जनतांत्रिक पद्धति को भारी चुनौती है। हिंसा और विध्वंस का रास्ता भारत की परम्परागत सांस्कृतिक गरिमा के प्रतिकूल है, निश्चय ही यह बुद्ध और गांधी का रास्ता नहीं है। अत यदि राष्ट्र के गौरव एवं जनतन्त्र की रक्षा करनी हो तो हमें एक ऐसी शिक्षा पद्धति का निर्माण करना होगा जो शिक्षार्थी मे नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था जगावे, स्वावलम्बन को आधार बना कर राष्ट्र को सत्य और अहिंसा के मार्ग की ओर प्रवृत्त करे।

गांधी-दर्शन :

आज के इस संघर्ष-प्रधान युग में गांधीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचार अध्ययन एवं मनन के योग्य हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान संदर्भ मे उनकी पूर्ण उपादेयता है लेकिन यह भी निर्विवाद सत्य है कि गांधीजी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा दर्शन मौलिक एवं सार्थक है।

गांधीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को जानने के पूर्व हमे उस पृष्ठभूमि को समझ लेना चाहिये जो कि गांधी-दर्शन का मूलाधार है। गांधी के अनुसार जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति है। यह आत्माभिव्यक्ति और ईश्वर की प्राप्ति एक ही वस्तु है। यह वह अवस्था है जबकि मनुष्य का सीधा सम्बन्ध ईश्वर से जुड़ जाता है और वह अपने जीवन के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लेता है। चूंकि यह इस वसुधा पर ही प्राप्त करना है, मानव को पार्थिव आवश्यकताओं को भी दृष्टिगत रखना है लेकिन इन सांसारिक आकांक्षाओं के मध्य भी उसे सतत आत्माभिव्यक्ति की ओर उन्मुख होना चाहिये। जीवन के सभी पक्षों का संचालन उन नैतिक आधारों के अधीन होना चाहिये जो हमें आत्माभिव्यक्ति की ओर अग्रसर करते हैं। सार यह है कि जीवन से सम्बन्धित अर्थनीति, राजनीति, शिक्षानीति आदि सभी नीतियां नैतिक नियमों के अनुरूप होनी चाहिये अन्यथा उनकी सार्थकता संदिग्ध है। जो शास्त्र मानव को नैतिकता की शिक्षा नहीं देता वह त्याज्य है क्योंकि उसमें शैतान का निवास है। गांधी के अनुसार समाज को शिक्षा के माध्यम द्वारा नैतिक बनाया जा सकता है। अतः शिक्षा पद्धति इस प्रकार की

होनी चाहिये जिससे श्रेष्ठ अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, समाज-सेवियों एवं प्रशासकों का निर्माण हो। चूंकि शिक्षा पर गांधीजी का अत्यधिक जोर है, उन्होंने इसके सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जिन्हें अत्यन्त संक्षेप में यहां दिया जा रहा है।

शिक्षा का स्वरूप :

गांधी स्वयं शिक्षक थे, सत्य और अहिंसा का पुजारी ही तो सच्चा शिक्षक हो सकता है। वह एक सच्चे शिक्षक की भांति सत्य का सतत परीक्षण करते रहते थे और अपने जीवन में भी उतारने का पूर्ण तत्परता के साथ प्रयत्न करते थे। इस सम्बन्ध में काका कालेलकर के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—

The only difference between Gandhi and the so-called education is that while the latter's conception of education is imperfect in many ways, Gandhi has developed a complete philosophy of education as well as an appropriate technique for putting it into practice. Those who have a clear understanding of the inner meaning of education will readity agree that a man who devotes all his time and energy to the pursuit of truth and non-violence must perforce be an educationist of the highest order.[1]

गांधीजी की शिक्षा का आधार स्वालम्बन है। वह शिक्षा के स्वावलम्बी होने को ही उसकी सफलता की कसौटी मानते हैं। इसके पीछे उनका विचार यह है कि बच्चों को जो भी दस्तकारी सिखाई जाय उसके द्वारा उन्हें पूरी तरह से शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक शिक्षा दी जाय। उद्योग की तमाम क्रियाओं के द्वारा शिक्षक बच्चों के अन्दर जो भी अच्छी चीज है, उन सबको विकसित कर सकता है। गांधीजी के अनुसार इतिहास, भूगोल और गणित आदि विषयों के जो पाठ पढ़ाये जाएंगे वे सब उस उद्योग से सम्बन्धित होंगे। अगर इस प्रकार की शिक्षा बच्चों को दी जाय तो परिणाम यह होगा कि वह शिक्षा स्वावलम्बी हो जायगी। गांधीजी के शब्दों में 'लेकिन सफलता

---

1. M. K. Gandhi : 'The Problem of Education'. Navjivan Publishing House, Ahmedabod.

की कसौटी उसका स्वाश्रयी रूप नहीं है, वल्कि यह देखकर सफलता का अंदाज लगाना होगा कि वैज्ञानिक रीति से उद्योग की शिक्षा के द्वारा मनुष्यत्व का विकास हुआ है या नहीं।"[1]

सम्पूर्ण शिक्षा, जो प्राथमिक शालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक हो, कुछ निश्चित आयामों को लेकर चलनी चाहिये। गांधीजी के अनुसार[2] इस प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा के निम्नलिखित मान्य सिद्धांत होने चाहिए—

1. शिक्षा मातृ भाषा में दी जाय,

2. शिक्षा और घर की स्थिति के बीच आपस मे मेल रहे।

3. शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे ज्यादातर लोगों की जरूरतें पूरी हों,

4. सारे ही शिक्षक चरित्रवान होने चाहिये,

5. शिक्षा मुफ्त दी जानी चाहिये,

6. शिक्षा की व्यवस्था पर जनता का अंकुश होना चाहिये।

गांधीजी का स्पष्ट मत है कि शिक्षा का माध्यम कभी कोई विदेशी भाषा नहीं हो सकती चाहे वह कितनी ही समृद्ध क्यों न हो? किसी सुन्दर खंजर को कोई अपने सीने में तो नहीं चुभो लेगा। उनके अनुसार अंग्रेजी दासता की प्रतीक है अतः केवल वह ही राष्ट्रीय भाषा हो सकती है जिसके निम्न लिखित लक्षण हों।[3]

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिये,

2. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिये।

3. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों,

---

1. मो. क. गांधी—बुनियादी शिक्षा, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद पृ. ६६.
2. मो. क. गांधी—सच्ची शिक्षा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद पृ. ३७.
3. मो. क. गांधी – राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद पृ. ४

4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए,

5. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिये।

गांधीजी के[1] अनुसार यह एक स्वयंसिद्ध बात है कि जब तक किसी देश के नवयुवक ऐसी भाषा में शिक्षा पाकर उसे, पचा न लें जिसे प्रजा समझ सकें, तब तक वे अपने देश की जनता के साथ न तो जीता जागता सम्बन्ध पैदाकर सकते हैं और न उसे कायम रख सकते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि जिस देश के लाखों नौजवान एक ऐसी विदेशी भाषा और उसके मुहावरे पर अधिकार पाने में कई साल नष्ट करने को मजबूर किये जाते हैं, जो उनके दैनिक जीवन के लिये बेकार है और जिसे सीखने में उन्हें अपनी मातृभाषा या उसके साहित्य की उपेक्षा करनी पड़ती है, इससे बढ़कर राष्ट्र की हानि और क्या हो सकती है। भाषा तो अपने बोलने वालों के चरित्र और विकास का सच्चा प्रतिबिम्ब है।'

गांधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का मूलाधार देख लेने के उपरान्त यद्यपि यह तो नही कहा जा सकता कि वर्तमान राष्ट्रीय संकट के पूर्ण निवारण हेतु वह कोई रामबाण औषधि है. लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि गांधीजी के विचार कितने ठोस एवं मौलिक हैं। जिनकी शाश्वतता एवं उपादेयता में किसी प्रकार का सन्देह व्यक्त नही किया जा सकता। उनकी शिक्षा बेकारी, बाबूगीरी को रोकती है। यह केन्द्रीयकरण और हिंसा को रोकती है, राष्ट्रीय चेतना का संचार करती है, मानवता की पोषक है एवं सार रूप में यह कहा जा सकता है कि वह एक ऐसे नैतिक इन्सान का निर्माण करती है जो कभी भी इस वसुधा पर होने वाले अन्याय, शोषण एवं उत्पीड़न को नहीं सहेगा एवं आत्मोन्मुख होकर एक ऐसे संसार के निर्माण में संलग्न रहेगा जहां शान्ति, समृद्धि एवं सुख की प्राप्ति हो सके। अन्त में, सच्ची शिक्षा को प्राप्त किया हुआ व्यक्ति कैसा होगा, स्वयं गांधीजी के शब्दों में निम्न पंक्तियों में उसका वर्णन किया जाता है:—

'उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है जिसका शरीर इतना सधा हुआ है कि उसके काबू में रह सके और आराम व आसानी के साथ उसका बताया हुआ काम करे। उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी

1. मो. क. गांधी—शिक्षा का माध्यम : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद पृ. 19

बुद्धि शुद्ध है शान्त है और न्यायदर्शी है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है जिसका मन कुदरत के कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में है, जिसकी अन्तरवृत्ति विशुद्ध है और जो नीच आचरण को धिक्कारता है तथा दूसरों को अपने जैसा समझता है। एसा आदमी सचमुच शिक्षा पाया हुआ माना जाता है, क्योंकि वह कुदरत के नियमो पर चलता है, कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।"

इस प्रकार यूनानी दार्शनिक प्लेटो की भांति गांधीजी भी शिक्षा के माध्यम से मानव को पूर्ण बनाने का ध्येय रखते हैं। एसे मानव का निर्माण ही वर्तमान सकट से मुक्ति दिलाने का सबसे महत्वपूर्ण प्रयास है जिसकी खोज में गाँधी ने अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया।

राष्ट्रपिताः सर्वोदय और शिक्षा के सन्दर्भ में

—श्याम श्रोत्रिय

स्वतन्त्रता के पुण्य प्रभात में जागकर हमारा राष्ट्र अपने नव-निर्माण हेतु सभी क्षेत्रों में, चतुर्मुखी योजनाओं के माध्यम से अग्रसर हो रहा है। राष्ट्र के आर्थिक विकास के साथ साथ हमारे संविधान द्वारा प्रतिपादित शिक्षा सम्बन्धी महत्वपूर्ण लक्ष्य की अभिपूर्ति हेतु, शिक्षा विशेषज्ञों का सक्रिय सहयोग ले, विश्वविद्यालय आयोग तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया और राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का स्वरूप निर्धारित किया गया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का इस नीति निर्धारण पर विशेष प्रभाव पड़ा।

सन् 1937 की जुलाई के 'हरिजन' में गांधीजी ने लिखा था—

' By education I mean an all round drawing out of the best in child and man-body, mind and spirit. Literacy itself is no education I could, therefore begin the child's education by teaching it a useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training."

उपर्युक्त कथन को आधार मानकर कहा जा सकता है कि गांधीजी "जीवन के द्वारा दी जाने वाली जीवन की शिक्षा' के पक्षधर थे—जिनमें

लिखने, पढ़ने, हिसाब करने का ही लक्ष्य नहीं वरन् जीवन के सम्पूर्ण पहलुओं का समावेश अपेक्षित है। उनकी शिक्षण पद्धति की प्रवृत्तियां हैं—

१. शारीरिक विकास तथा स्वस्थ जीवन बिताने का अभ्यास।

२. नागरिक एवं सामाजिक जीवन बिताने का अभ्यास।

३. स्वावलम्बन का अभ्यास।

४. रचनात्मक तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का अभ्यास।

उक्त प्रवृत्तियों से व्यक्ति में अधोलिखित परिवर्तन सम्मिलित हो जाते हैं—

१. व्यक्ति हाथ से मजदूर, मस्तिष्क से वैज्ञानिक और हृदय से कलाकार बनता है।

२. व्यक्ति सामाजिक जीवन में श्रम की प्रतिष्ठा को समझने लगता है।

३. व्यक्ति में वैज्ञानिक धारणा एवं मनोवृत्ति का विकास हो जाता है।

४. व्यक्ति आत्मतोषी, इच्छाओं पर नियन्त्रण रखने वाला एवं सादगी पसन्द बनता है।

गांधीजी के मत में शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए। बालक अपनी क्रियाओं से ज्ञान अर्जित करे और सीखे। ये क्रियायें सलक्ष्य और निर्माणकारी हों। इन्हें किसी हस्तकला एवं उद्योग के रूप में संचालित किया जाना चाहिए। अध्यापक और विद्यार्थी सीखने के लिये पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हों तथा क्रियाओं में श्रम का अभ्यास अपने आप होता जाय। उक्त क्रियाओं में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों सामुदायिक विकास एवं सामाजिक प्रगति के लिए मिलकर कार्य करें।

गांधीजी का शिक्षादर्शन उनका जीवनदर्शन ही है। वे जिस समाज रचना की बात सोचते थे उसे उन्होंने 'सर्वोदय' की संज्ञा दी। सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय अर्थात् सबके भले में अपना भला। यह "वसुधैव कुटुम्बकम्" की ही दृष्टि है।

गांधीजी के जीवनदर्शन का आधार सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह है। सत्य उनके जीवनदर्शन का विचारात्मक पक्ष है और अहिंसा प्रयोगात्मक पक्ष। अतः उन्होंने अपने जीवन को 'सत्य का प्रयोगशाला कहा है—अपरिग्रह उसकी

आत्मा है। उनके आध्यात्मिक विकास का आधार सत्य, सामाजिक व्यवस्था का आधार अहिंसा और अर्थ रचना का आधार अपरिग्रह है।

गांधीजी जनता के विचारों में परिवर्तन के आधार पर समाज में एक व्यापक अहिंसक क्रान्ति लाना चाहते थे। वे ऐसे अहिंसक स्वावलम्बी समाज की नींव डालना चाहते थे जो दण्ड निरपेक्ष, राज्य निरपेक्ष और वर्ग निरपेक्ष हो; जिसका आधार आर्थिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण हो—क्योंकि शोषण से मुक्त होने के लिये यह आवश्यक है कि साध्य के साथ-साथ हमारे साधन भी अच्छे हों, तभी नये मूल्यों की स्थापना हो सकती है।

गांधीजी व्यक्ति को समाज का एक अंग नहीं—स्वयं एक पूर्ण इकाई मानते थे अर्थात् यह मानते थे कि व्यक्ति के विचारों के परिवर्तन पर ही सामाजिक परिवर्तन की स्थायी नींव रखी जा सकती है।

गांधीजी के विचारों पर—अर्थदर्शन पर – 'रस्किन', समाजदर्शन पर- 'टॉलसटाय' तथा आध्यात्मदर्शन पर – 'गीता' का प्रभाव पड़ा है।

सर्वोदय का दर्शन मूलतः आध्यात्मवादी है। वह स्थूल (भौतिकता) के प्रति सूक्ष्म (आत्मा) का विद्रोह है। सर्वोदय के अन्तर्गत आत्मदर्शन का आधार ईश्वर निष्ठा है – जिसमें शरीर व आत्मा का समन्वय होता है। आत्मा की मुक्ति अथवा परमात्मा से उसका साक्षात्कार सत्य के द्वारा संभव हो सकता है, अहिंसा उसकी आधारशिला है। ईश्वर स्वयं परमसत्य है और उसका साक्षात्कार परमसत्य की प्राप्ति है। शिक्षा को भी गांधीजी इसी आत्मा की मुक्ति का साधन मानते थे –

"सा विद्या या विमुक्तये"

गांधीजी की अहिंसा बलवानों की अहिंसा है – कायरों की नहीं। शत्रु का भी हृदय परिवर्तन कर सके – यह इसकी कसौटी है। इसमें नम्रता, करुणा व सहिष्णुता आदि गुण स्वाभाविक रूप में आ जाते हैं।

सर्वोदय के समाजदर्शन का आधार है सांस्कृतिक पुनरोत्थान एवं समाज से विषमता और शोषण का मूलोच्छेदन। यह समता एवं स्वावलम्बन के आधार पर ही हो सकता है। अतः सहयोग और स्वावलम्बन सर्वोदय-समाजदर्शन के मूल तत्व हैं। सर्वोदय दर्शन में वस्तु की अपेक्षा मानव का मूल्य अधिक है। अतः समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। समाज में उत्पादन की प्रक्रिया भी मानव जीवन को सुखी व आत्मतुष्ट बनाने के लिए होनी चाहिए न कि भौतिक

लालसाओं की तृप्ति के लिये । इस ध्येय की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि मानव के सामाजिक जीवन के सम्बन्धों में प्रेम, त्याग एवं संतोष की भावना ही व्याप्त रहनी चाहिए – स्वार्थ एवं प्रतिद्वंदिता की नहीं।

सर्वोदय की अर्थव्यवस्था का मूलाधार विकेन्द्रीकरण है जहां वर्ग-विहीन, स्वावलम्बी एवं सहयोगी समाज-रचना को लक्ष्य माना जाता है।

सर्वोदय की विचारधारा मशीनों के विरुद्ध नहीं है। आखिर चर्खा भी एक छोटी मशीन ही है। वह सीमित रूप में केन्द्रित उद्योग धन्धों को भी स्वीकार करती है। परन्तु मशीनें मानव के लिये होनी चाहिएं न कि मानव 'मशीन' के लिए। पर आज तो मानव मशीनों का पुर्जा बनकर उनका गुलाम बन गया है। मशीनों की होड़ इतनी बढ़ गई है कि आधुनिकतम कारखानों में लगी पचास लाख की पूंजी केवल दो श्रमिकों (इंजीनियरों) को खपा पाती है। प्रश्न उठता है-आखिर मनुष्य का क्या होगा?

अतः सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था स्वावलम्बी इकाइयों पर आधारित है। उत्पादन के मूल में मानवहित निहित होता है—शोषण या मुनाफा-वृत्ति नहीं।

सर्वोदय की शासन व्यवस्था शुद्ध सत्य व न्याय पर आधारित है–भय अथवा दण्ड पर नहीं। समाज में नैतिकता एवं प्रेम के आधार पर अनुशासन रखा जा सकता है। जहां शासन हिंसा पर आधारित होता है वहां प्रतिहिंसा जन्म लेती है और हिंसा प्रतिहिंसा का चक्र चलता रहता है।

समाज की विकेन्द्रित राज व्यवस्था में गांधी विचारधारा वाले शिक्षण का बहुत बड़ा योग रहता है। इन सिद्धान्तों पर आधारित शालायें लोकजीवन से सम्बंधित होकर विकेन्द्रीकरण की इकाई-ग्राम की व्यवस्था में प्रत्यक्ष भाग लेती हैं। इस प्रकार सर्वोदय की व्यवस्था के मूल में स्वशासन व स्वावलम्बन ही मुख्य है।

गांधी दर्शन पर आधारित शिक्षा-पद्धति तो जीवन-पद्धति है जिसकी प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक चलती है-यहां तक कि शाला की चहारदीवारी भी उन्मुक्त शिक्षा के लिये बाधक है। उसका शिक्षणक्रम केवल कक्षाओं में नहीं जीवन के साथ-साथ चलता है। अतः वह केवल जीने की शिक्षा ही नहीं ठीक प्रकार से जीने की शिक्षा-पद्धति है।

शिक्षा के सम्बन्ध मे गांधीजी के जो विचार सिद्धान्त रूप में साकार हुए उनका एक क्रमिक इतिहास है। जिस पर दृष्टिपात करना अधिक समीचीन होगा।

दक्षिणी अफ्रीका में गांधीजी के समक्ष जब अपने बच्चों की शिक्षा की समस्या प्रस्तुत हुई उस समय तक उनका विचार था कि प्रारंभिक शिक्षण की बहुत सम्भावनायें घर पर ही हैं अतः इस कार्य को पूर्णतया विद्यालय को सौंपना उचित नही। उनका यह भी विचार था कि मात्र बौद्धिक शिक्षा ही सम्पूर्ण शिक्षा नही है यद्यपि वह शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

अफ्रीका में गांधीजी ने जब बाजार से रोटी मँगवाना बन्द कर दिया तो घर पर ही हाथ के पिसे आटे की खमीर की रोटियाँ बनवाने लगे। आटा पीसने के लिये उन्होंने बच्चों से काम लेना आरम्भ किया। बच्चों को आटा पीसने में बड़ा आनन्द आता था-साथ ही उनका व्यायाम भी हो जाता था। गांधी जी के घर पर सफाई से लेकर भोजन बनाने तक का काम घर वालों को ही करना पड़ता था। जो बच्चे रसोई में काम नहीं करते उन्हें खेत में बीज बोने, पौधे लगाने आदि का कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार गांधी जी ने यह अनुभव किया कि इस प्रकार के कामों में बच्चे बड़ी रुचि लेते हैं और उनका शारीरिक व्यायाम भी स्वतः हो जाता है।

'डरबन' और 'जोहन्सबर्ग' में घर पर अपने बच्चों पर गांधीजी ने जो शिक्षण सम्बन्धी प्रयोग किये उनमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। इन प्रयोगों को बाद में उन्होंने बड़ा रूप प्रदान किया।

सन् 1904 में भारतीयों के हितों व अधिकारों के लिये अफ्रीका से निकलने वाले पत्र 'इण्डियन ओपीनियन' के कर्मचारियों के लिये गांधीजी ने 'फिनिक्स संस्थान' की स्थापना की। यहीं गांधीजी ने अपने शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिये ठोस कदम उठाया। संस्थान के निवासियों को बड़ा अनुशासित और सात्विक जीवन बिताना पड़ता था। जिसमें ब्रह्मचर्य, सादापन, सद्भावना, प्रेम, शारीरिकश्रम-निष्ठा आदि सद्गुण सम्मिलित थे।

'फिनिक्स संस्थान' में जो पाठशाला आरम्भ की गई उसमें छात्र 3 घंटे शाला में, 2 घंटे खेत पर और 2 घंटे प्रेस में काम करते थे। रात्रि को पुस्तकें पढ़ने का कार्यक्रम था। अध्यापन कार्य में विशेषता यह थी कि छात्र

उत्पादन या श्रम का कार्य करते-करते ही साधारण ज्ञान की बातों, महापुरुषों की जीवनियों, दैनिक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं आदि का ज्ञान प्राप्त करते थे।

गांधीजी ने अनुभव किया कि बुद्धि एवं कर्म के समन्वय के द्वारा बालकों के मन एवं व्यवहार दोनों शुद्ध रहते हैं और इससे चरित्र निर्माण मे भी योग मिलता है। गाधीजी की धारणा थी कि शिक्षा का प्रारम्भ साक्षरता से न करके दैनिक व्यवहार, इन्द्रियों एवं चरित्र की शिक्षा से किया जाय।

गाधीजी नकारात्मक अनुशासन एवं शारीरिक दण्ड के सर्वथा विरुद्ध थे तथा प्रेम और सहानुभूति द्वारा छात्रों को जीतने के पक्ष मे थे।

सन् 1910 में दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रियों के लिये 'टॉलसटाय आश्रम' की स्थापना की गई। यहाँ प्रारम्भ से ही गांधीजी ने ऐसी परम्परा डाली कि जिस कार्य को अध्यापक स्वयं न करता हो उसे करने के लिये छात्रों को भी न कहे तथा जो अध्यापक छात्रों को कार्य करना सिखाये वही उनके साथ भी रहे। यहाँ मौखिक विधि द्वारा छात्रों को पढ़ाया जाता था। पुस्तकीय आधार का प्रयोग कम किया जाता था। अध्यापक को स्वयं जीती जागती पुस्तक माना गया था। यहाँ धार्मिक और नैतिक शिक्षा द्वारा चरित्र सगठन का मार्ग बताया जाता था। आश्रम में सभी के लिये कम से कम आठ घंटे कार्य करना जरूरी था। इसी समय मे काष्ठ उद्योग, चर्म उद्योग व बागवानी की व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती थी। बच्चो को शिक्षा उनकी मातृभाषा में दी जाती थी। अतः हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, इतिहास व भूगोल के अतिरिक्त उर्दू, गुजराती व तामिल आदि भाषायें भी सिखाई जाती थी।

टॉलसटाय आश्रम मे लड़के-लड़कियों को साथ शिक्षा दी जाती थी किन्तु उन्हें एकान्त मे रहने की आज्ञा न थी। वे सामूहिक रूप में साथ-साथ स्नान आदि अन्य कार्य करते थे। बालक बालिकायें व अध्यापक सभी लकड़ी के टुकड़ों के तकिये लगाकर सोते थे तथा प्रत्येक को ओढने व बिछाने के लिये दो-दो कम्बल दिये जाते थे।

भारत लौटने पर 1915 में गाधीजी ने साबरमती के किनारे 'साबरमती आश्रम' की स्थापना की। दक्षिण अफ्रीका से गाधीजी के साथ भारत लौटने वाले लोगों को यहाँ शिक्षा दी जाती थी। कताई बुनाई के

शिक्षा के सम्बन्ध में गांधीजी के जो विचार सिद्धान्त रूप में साकार हुए उनका एक क्रमिक इतिहास है। जिस पर दृष्टिपात करना अधिक समीचीन होगा।

दक्षिणी अफ्रीका में गांधीजी के समक्ष जब अपने बच्चों की शिक्षा की समस्या प्रस्तुत हुई उस समय तक उनका विचार था कि प्रारंभिक शिक्षा की बहुत सम्भावनायें घर पर ही हैं अतः इस कार्य को पूर्णतया विद्यालय को सौंपना उचित नहीं। उनका यह भी विचार था कि मात्र बौद्धिक शिक्षा ही सम्पूर्ण शिक्षा नहीं है यद्यपि वह शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

अफ्रीका में गांधीजी ने जब बाजार से रोटी मँगवाना बन्द कर दिया तो घर पर ही हाथ के पिसे आटे की खमीर की रोटियाँ बनवाने लगे। आटा पीसने के लिये उन्होंने बच्चों से काम लेना आरम्भ किया। बच्चों को आटा पीसने में बड़ा आनन्द आता था-साथ ही उनका व्यायाम भी हो जाता था। गांधी जी के घर पर सफाई से लेकर भोजन बनाने तक का काम घर वालों को ही करना पड़ता था। जो बच्चे रसोई में काम नहीं करते उन्हें खेत में बीज बोने, पौधे लगाने आदि का कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार गांधी जी ने यह अनुभव किया कि इस प्रकार के कामों में बच्चे बड़ी रुचि लेते हैं और उनका शारीरिक व्यायाम भी स्वतः हो जाता है।

'डरबन' और 'जोहन्सबर्ग' में घर पर अपने बच्चों पर गांधीजी ने जो शिक्षण सम्बन्धी प्रयोग किये उनमे उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। इन प्रयोगों को बाद में उन्होंने बड़ा रूप प्रदान किया।

सन् 1904 मे भारतीयो के हितों व अधिकारों के लिये अफ्रीका से निकलने वाले पत्र 'इण्डियन ओपीनियन' के कर्मचारियों के लिये गांधीजी ने 'फिनिक्स संस्थान' की स्थापना की। यहीं गांधीजी ने अपने शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिये ठोस कदम उठाया। संस्थान के निवासियों को बड़ा अनुशासित और सात्विक जीवन बिताना पड़ता था। जिसमें ब्रह्मचर्य, सादापन, सद्भावना, प्रेम, शारीरिकश्रम-निष्ठा आदि सद्गुण सम्मिलित थे।

'फिनिक्स संस्थान' मे जो पाठशाला आरम्भ की गई उसके छात्र 3 घंटे शाला मे, 2 घटे खेत पर और 2 घटे प्रेस में काम करते थे। रात्रि को पुस्तकें पढ़ने का कार्यक्रम था। अध्यापन कार्य में विशेषता यह थी कि छात्र

उत्पादन या श्रम का कार्य करते-करते ही साधारण ज्ञान की बातों, महापुरुषों की जीवनियों, दैनिक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं आदि का ज्ञान प्राप्त करते थे।

गाधीजी ने अनुभव किया कि बुद्धि एवं कर्म के समन्वय के द्वारा बालकों के मन एवं व्यवहार दोनों शुद्ध रहते हैं और इससे चरित्र निर्माण में भी योग मिलता है। गांधीजी की धारणा थी कि शिक्षा का प्रारम्भ साक्षरता से न करके दैनिक व्यवहार, इन्द्रियों एवं चरित्र की शिक्षा से किया जाय।

गाधीजी नकारात्मक अनुशासन एवं शारीरिक दण्ड के सर्वथा विरुद्ध थे तथा प्रेम और सहानुभूति द्वारा छात्रों को जीतने के पक्ष मे थे।

सन् 1910 मे दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रियो के लिये 'टॉलस्टाय आश्रम' की स्थापना की गई। यहाँ प्रारम्भ से ही गांधीजी ने ऐसी परम्परा डाली कि जिस कार्य को अध्यापक स्वयं न करता हो उसे करने के लिये छात्रों को भी न कहे तथा जो अध्यापक छात्रों को कार्य करना सिखाये वही उनके साथ भी रहे। यहाँ मौखिक विधि द्वारा छात्रो को पढ़ाया जाता था। पुस्तकीय आधार का प्रयोग कम किया जाता था। अध्यापक को स्वयं जीती जागती पुस्तक माना गया था। यहाँ धार्मिक और नैतिक शिक्षा द्वारा चरित्र संगठन का मार्ग बताया जाता था। आश्रम में सभी के लिये कम से कम आठ घंटे कार्य करना जरूरी था। इसी समय मे काष्ठ उद्योग, चर्म उद्योग व बागवानी की व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती थी। बच्चो को शिक्षा उनकी मातृभाषा में दी जाती थी। अतः हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, इतिहास व भूगोल के अतिरिक्त उर्दू, गुजराती व तामिल आदि भाषायें भी सिखाई जाती थी।

टॉलस्टाय आश्रम में लड़के-लड़कियों को साथ शिक्षा दी जाती थी किन्तु उन्हें एकान्त में रहने की आज्ञा न थी। वे सामूहिक रूप में साथ-साथ स्नान आदि अन्य कार्य करते थे। बालक बालिकायें व अध्यापक सभी लकड़ी के टुकड़ों के तकिये लगाकर सोते थे तथा प्रत्येक को ओढ़ने व बिछाने के लिये दो-दो कम्बल दिये जाते थे।

भारत लौटने पर 1915 मे गांधीजी ने साबरमती के किनारे 'साबरमती आश्रम' की स्थापना की। दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी के साथ भारत लौटने वाले लोगों को यहाँ शिक्षा दी जाती थी। कताई बुनाई के

शारीरिक श्रम उद्योग शिक्षा सभी के लिए आवश्यक था। सभी लोग अपना कार्य अपने हाथ से करते थे।

दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर गांधीजी कुछ दिनों तक शान्ति निकेतन में भी रहे। यहाँ भी उन्होंने खाना बनाने के लिये छात्रों को प्रेरणा दी। सभी मान गये। चार दलों में सारा कार्य बाँट दिया गया। बर्तन माँजने वाले दल का सितार बजाकर मनोरंजन किया जाता था। किन्तु गांधीजी वहाँ अधिक दिनों तक नहीं रह सके और यह प्रयोग बन्द हो गया।

सन् 1920 के असहयोग आन्दोलन में सरकारी स्कूलों का बहिष्कार भी सम्मिलित था। राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पाँच विद्यापीठ खोले गये। बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, जामियामिलिया-दिल्ली, महाराष्ट्र विद्यापीठ और गुजरात विद्यापीठ। इनमें गुजरात विद्यापीठ सबमें प्रमुख था। इस विद्यापीठ के कुलपति स्वयं गांधीजी थे। आचार्य कृपलानी, काका कालेलकर और डाक्टर गिडवानी उसके आचार्य थे। विद्यापीठ के उद्देश्य निम्न रूप से निर्धारित थे:—

1. बालक का सर्वांगीण विकास करना (शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक)
2. स्वावलम्बन के लिये कुटीर उद्योग सिखाना
3. मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना
4. बौद्धिक की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल देना
5. भारतीय संस्कृति को मूलाधार मानना
6. व्यक्ति उत्थान के स्थान पर समाजोत्थान के निमित्त शिक्षा देना
7. शारीरिक दण्ड वर्जित मानकर प्रेम व सहानुभूति के आधार पर शिक्षा देना एवं अनुशासन रखना
8. बालकों एवं प्रौढ़ों के लिए शिक्षा समान रूप से आवश्यक मानना
9. अस्पृश्यता को अपराध मानना
10. हिन्दुस्तानी सीखने को अनिवार्य मानना

विद्यापीठ में नाम मात्र की फीस भी थी ताकि विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करके हीन-भावना ग्रस्त न हों। इस फीस की पूर्ति भी उद्योग द्वारा करने का प्रयत्न किया जाता था।

गांधीजी मेकॉले द्वारा दी जाने वाली शिक्षा प्रणाली के सर्वथा विरुद्ध थे। प्रचलित शिक्षा पद्धति से विद्यार्थी आचार विचार और संस्कृति में विदेशी हो जाते थे। शिक्षा का चरित्र संगठन से कोई सम्बन्ध न था। शिक्षा में श्रम का महत्व न था। ग्रामों से आने वाले विद्यार्थी शिक्षित होने के बाद गाँवो में बसना भी नहीं चाहते थे। ऐसी शिक्षा-प्रणाली से देश के उद्धार की कोई सम्भावना न थी। अतः नवीन शिक्षा-पद्धति की आवश्यकता थी और इसी को गांधीजी ने राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति कहा।

सन् 1925 में राष्ट्रीय विद्या मंदिर पाठशाला में गांधी जी ने कहा था—

राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति वह है जिसमें 'चरखे का काम चलता हो। जिसमें शिक्षक और शिक्षार्थी मिलकर आधा घंटा चरखा कातते हों तथा दोनों ही हाथ को कते व बुनी खादी पहिनते हों। जिसमें मातृभाषा या हिन्दुस्तानी के माध्यम से शिक्षा दी जाती हो। जिसमें व्यायाम को पूरा स्थान हो। जिसमें हिन्दू मुसलमानों के दिलों को एक करने का प्रयत्न किया जाता हो। जिसमें अछूतों का किसी भी प्रकार त्याग नहीं किया जाता हो।'

गुजरात विद्यापीठ का विस्तार इन्हीं आदर्शों को सामने रखकर किया गया। अन्य संस्थाओं ने भी इस आदर्श को अपनाया–इनके नाम हैं— विद्या मंदिर ट्रेनिंग स्कूल, मध्यप्रदेश, जामियामिलिया, दिल्ली, महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना; आन्ध्र जातिकला शाला, मेलीपट्टम; विद्याभवन, उदयपुर; गांधी विद्या मंदिर, सरदार शहर आदि।

आजकल के प्रचलित बहुद्देशीय उच्च माध्यमिक विद्यालय जिनमें हस्तकला (क्राफ्ट) और विभिन्न औद्योगिक (टैक्नीकल) विषय पढ़ाये जाते हैं छात्रों को आत्मनिर्भर नहीं बना पाते। उन्हें यदि 'गांधी शिक्षा दर्शन' के अनुसार परिवर्तित किया जासके तो अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं।

गांधी दर्शन के अनुसार शिल्प को कला से समन्वित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो विज्ञान को आध्यात्म से समन्वित होना चाहिए। तभी मानव सच्चे अर्थों में मानवीय दृष्टिकोण अपना सकता है।

महात्मा गांधी ने सर्वोदय और शिक्षादर्शन के सम्बन्ध में जो विचार प्रतिपादित किये उनका प्रमुख उद्देश्य था कि राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रचार हो और स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन को बल मिले। स्वतन्त्रता तो प्राप्त होगई।

आर्थिक जनतन्त्र के निर्माण में गांधीजी का शैक्षिक चिन्तन

—बी॰ एल॰ जोशी

शिक्षा भावी समाज निर्माण, भावी नागरिकों के सृजन एवं राष्ट्र के भावी दृढ़ीकरण का यन्त्र है। यदि हमारी शिक्षा ऐसी नागरिकता का सृजन करे कि जिसने अपनी शिक्षा के लिये परिश्रमपूर्वक उद्योग किया हो, अपनी पढ़ाई का खर्च निकालने के साथ-साथ अपनी बुद्धि, शरीर और आत्मा का विकास भी सिद्ध किया हो यदि हमारे विद्यार्थी श्रम की गौरव गरिमा का अनुभव करना सीखें, हाथ उद्योग के अज्ञान को अप्रतिष्ठा का चिन्ह माना जाने लगे, विद्यार्थी ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे आर्थिक प्राप्ती हो इस तरह स्कूल और कालेज स्वावलम्बी हों। ऐसे श्रमनिष्ठ सृजनोन्मुख सर्वांगीण विकास को गांधीजी ने शिक्षा कहकर अपने शैक्षिक चिन्तन को उत्पादकता, सृजनोन्मुखता, स्वावलम्बन का सुदृढ़ आधार प्रदान किया था।

महात्मा गांधी ने दरिद्रनारायण से साक्षात्कार किया था, उन्होंने भारत में व्याप्त विपन्नता, आर्थिक असमानता, असन्तोष, आलस्य, अन्ध-विश्वास, अन्धानुकरण, आडम्बर, असभ्यता एवं अग्राम.जिकता, अनुशासन-हीनता के मध्य पल्लवित, पोषित, पुष्पित, फलित दरिद्रनारायण के दारुण दुख को आत्मसात किया था अतः उनका समग्र शैक्षिक चिन्तन आर्थिक चिन्तन था, आर्थिक चेतन था, आर्थिक जागरण एवं आर्थिक स्वावलम्बन का पावन सन्देश था।

आनन्द प्राप्त होगा। उनकी बुद्धि को स्फूर्ति मिलेगी, उनके हाथों को काम मिलेगा।

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा बनाम उत्पादकता—

गांधीजी ने गाव के बच्चों को सुधार संवार कर उन्हें गाव का आदर्श बाशिंदा बनाने की दृष्टि से दस्तकारी के माध्यम से बालकों का शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास करने के उद्देश्य से बुनियादी तालीम का शैक्षिक चिन्तन हमें प्रदान किया, उन्होंने दिनांक ६-४-४० के हरिजन में बुनियादी तालीम के विचार को स्पष्ट करते हुए इसके आर्थिक आधार की स्पष्ट घोषणा की है—

१. सारी शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए यानि आखिर मे पूंजी को छोड़कर अपना सारा खर्च उसे खुद देना चाहिए।

२. इसमे आखिर दर्जे तक हाथ का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय, विद्यार्थी अपने हाथ से कोई न कोई उद्योग धन्धा आखिर दर्जे तक करें।

उन्होंने नई तालीम को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा था बालकों को उनके आस-पास के वातावरण के अनुकूल किसी धन्धे की शिक्षा दी जाय तो न केवल उससे उन पर होने वाले व्यय की पूर्ति ही होगी बल्कि वे भावी जीवन में भी स्वावलम्बी होंगे इसमें साहित्य की शिक्षा का बहिष्कार नहीं किया गया है। प्राथमिक शिक्षा का कोई भी पाठ्यक्रम तब तक सम्पूर्ण नहीं माना जायगा जब तक उसमे पढ़ने लिखने और गणित को स्थान नहीं होगा। औद्योगिक शिक्षा के साथ साथ इतिहास, भूगोल व गणित की जबानी तालीम भी पाते जायेंगे, वे सदाचार सीखेंगे रात दिन की व्यवहारिक सफाई, स्वच्छता और व्यवस्था का आदर्श पाठ पढ़ेंगे। जो कुछ सीखेंगे उसे अपने साथ घरों मे ले जाएंगे और चुपचाप एक क्रान्तिकारी काम करने लगेंगे।

मैं इस तरह एक सम्पूर्ण स्वावलम्बी शाला की कल्पना कर सकता हूं जिसमे कताई बुनाई का कार्य सिखाया जाता है और अनेकानेक धन्धे रुचि के अनुसार सिखाये जाते हैं। ये धन्धे ग्राम की कृषिजन्य वस्तुओं के उत्पादन से संचालित होते हैं।

उच्च शिक्षा बनाम वृहत उद्योगों की तकनीकी तालीम—

महात्मा गांधी ने जिस प्रकार प्रारम्भिक, माध्यमिक शिक्षा को उत्पादकता एवं हस्तकला पर आधारित किया है शिक्षा में स्वावलम्बन की

दृष्टि से उन्होंने जहां शिक्षा संस्थाओं को स्वावलम्बी उत्पादक इकाइयों के रूप में सुगठित किया है वहां उन्होंने उच्चशिक्षा को बृहत उद्योगों की तकनीकी तालीम का संबल प्रदान किया है। उन्होंने उच्च शिक्षा की व्याख्या करते हुए कहा है: मैं कालेज की शिक्षा में कायापलट करके उसे राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाउंगा, यन्त्रविद्या के तथा अन्य इन्जिनियरों के लिए डिग्रियां होंगी वे भिन्न-भिन्न उद्योगों के साथ जोड़ दिए जाएंगे उन उद्योगों को जिन स्नातकों की जरूरत होगी उनके प्रशिक्षण का खर्च वे उद्योग ही देंगे। इस प्रकार टाटा वालों से आशा की जायगी कि वे राज्य की देख-रेख में इन्जिनियरों को तालीम देने के लिए कालेज चलावें। इसी तरह अन्य उद्योगों एवं मिलों के संघ अपनी जरूरत के स्नातकों की तालीम की व्यवस्था करेंगे। वाणिज्य व्यवसाय वालों के लिए अपना कालेज होगा। कला, औषधि एवं कृषि के लिए भी उन्होंने स्वावलम्बी महाविद्यालयों की स्थापना का निर्देश दिया है। डाक्टरी के कालेज अस्पतालों के साथ जोड़ दिए जाएंगे। वे धनवानों के दान-अनुदान से चलाए जा सकते हैं। इसी तरह कृषि कालेज तो अपने नाम को सार्थक करने के लिए स्वावलम्बी होने ही चाहिएं।

देश में महाविद्यालय यदि देश की जरूरत के अनुसार चलने वाले हों, कृषि महाविद्यालय यदि देश के खेतों पर तालीम ले तो उन्हें अपनी डिग्रियां लेने के बाद और अपने मालिकों के खर्च पर तजुरबा हासिल करने के बाद बेकारी का सामना नहीं करना पड़ेगा।

इस प्रकार लोकतान्त्रिक योजना मे विद्या के प्रचार पर लगाया गया रुपया लोगों को दस गुना लाभ पहुंचायेगा जैसे अच्छी जमीन में बोया गया बीज बढ़िया फसल पैदा करता है उसी प्रकार शिक्षा देश में आर्थिक उत्थान और स्वावलम्बन के लिये होगी।

प्रौढ़ शिक्षा, दैनिक व्यवहार—

महात्मा गांधी ने प्रौढ़ शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता देते हुए गांवों में व्याप्त घोर अन्धकार, अशिक्षा, अन्धविश्वास और अज्ञान को दूर भगाने पर बल दिया था उन्होंने कहा था लिखने पढ़ने और अंकगणित का शुष्क ज्ञान देहातियों के जीवन का स्थायी अंग न आज है और न कभी हो सकता है उन्हें ऐसा ज्ञान देना चाहिये जिसका उपयोग उन्हें रोज करना पड़ता है। ज्ञान उन पर थोपा नहीं जाना चाहिये, उन्हें ज्ञान की भूख होनी चाहिये। आजकल उन्हें जो कुछ मिलता है उसकी न तो उन्हें आवश्यकता है और न कदर है।

ग्रामवासियों को गणित सिखाइये जिसे उन्हें रोज काम मे लेना पड़े। गाव का इतिहास व साहित्य का ज्ञान समझाइये जिसे उन्हे रोज काम मे लेना पड़े। उन्हें ग्रामोद्योग, ग्रामीण कृषि, ग्रामीण व्यवहार एवं ग्राम सभ्यता की तालीम देना ही उनके लिये उत्तम होगा इससे वे अपने ज्ञान का लाभ अपने आर्थिक स्तर को समुन्नत करने मे कर सकेंगे। गांव का जीवनस्तर ऊंचा उठेगा। उन्हे सच्ची राजनैतिक तालीम दीजिये, उन्हें सच्चा व्यवहारिक अर्थशास्त्र पढ़ाइये उन्हें ग्रामोद्योग एवं ग्राम वाणिज्य व्यवहार को बातें बताइये तभी हम आर्थिक जनतन्त्र की कल्पना को शिक्षा के माध्यम से पूरा कर सकेंगे।

गृह अर्थशास्त्र और स्त्री शिक्षा—

गांधीजी राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को एक सुसंगठित, सुदृढ़, सुसम्पन्न एव स्वावलम्बी आर्थिक इकाई के रूप में सृजन करना चाहते थे जहा बाहरी कार्यों में पुरुष की प्रधानता का महात्माजी स्वीकार करते थे वहां भीतरी गृह-व्यवस्था मे स्त्री की प्रमुखता के पक्षपाती थे। वे भारतीय गृहिणी के अनुरूप ही स्त्री शिक्षा की व्यवस्था के अनुमोदक थे। उन्होने स्त्री शिक्षा के लिये जो पाठ्यक्रम प्रस्तावित किया था उसमें उन्होंने गृहविज्ञान, गृह व्यवस्था, बच्चों की देखभाल, हस्तकला, कसीदाकारी एवं कुटीर उद्योगों की व्यवहारिक शिक्षा की व्यवस्था की थी। उन्होंने स्पष्ट कहा था मैं नहीं मानता कि स्त्री को नौकरी ढूंढने अथवा व्यापार करने के चक्कर में पड़ना चाहिये। मात्र स्त्री को अपने स्वाभाविक अधिकारों को काम मे लाने के लिये उनकी शोभा बढ़ाने के लिये और उनका समुचित प्रचार व यथावत व्यवहार के लिये स्त्रियों मे शिक्षा की जरूरत है क्योंकि विद्या के बिना लाखों को शुद्ध आत्मज्ञान भी नहीं मिल सकता है।

इस प्रकार स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता का अनुमोदन करते हुए महात्मा गांधी ने स्त्री शिक्षा के लिये जो व्यवहारिक शिक्षा प्रणाली प्रदान की है वह मूलतः उनके आर्थिक चिन्तन का ही परिणाम थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधीजी का समग्र शिक्षा चिन्तन सुदृढ़ आर्थिक आधारों पर आधारित था।

महात्मा गान्धी ने स्वस्थ, ईमानदार, समझदार, और स्वावलम्बी ग्रामवासी बनाने के लिये श्रमनिष्ठ सहयोगी परिश्रमी ग्रामवासी बनाने के लिये भारत के 7 लाख गांवों की विपन्नता, आर्थिक असमानता को दूर करने के लिये भारत को एक सुदृढ़, सम्पन्न, समृद्ध, स्वावलम्बी, सशक्त एवं सुगठित संगठित राष्ट्र निर्माण करने के लिये तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ २

आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये एक कर्मनिष्ठ आर्थिक स्वतन्त्रता के नि
लिये शिक्षा के समग्र चिन्तन को आर्थिक सुदृढ़ता एवं उत्पादक
स्वावलम्बी स्वचालित सक्षम समर्थ और सबल आधार प्रदान किया है
उन्होंने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा को शैक्षिक आयोजन का अनिवार्य अंग
स्त्री शिक्षा एवं सहशिक्षा के अर्वाचीन एवं साहसी कदम उठाने के
शैक्षिक जगत को प्रेरित किया है वहाँ महात्मागांधी ने अध्यापक
कुशल किसान, कुशल बुनकर, कुशल चर्मकार एवं औद्योगिक बन
मार्गदर्शन प्रदान किया है। शिक्षक और शिक्षा पर शैक्षिक व्यय मात
कर उन्होंने मितव्ययी एवं स्वावलम्बी शिक्षा की ओर प्रवृत कर भ
आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप पथ प्रदर्शित किया है। सार्वजनिक साक्षर
सार्वजनिक शिक्षा को भारत के लिए अनिवार्य माना है। सर्वोपरि प्रार्थ
प्रदान की है। समग्र शिक्षा मे आमूलचूल परिवर्तन की प्रेरणा दी है। श्र
माध्यमिक शिक्षा को गांव वालों पर एक बोझ बतलाते हुए महात्मा
प्राथमिक माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को बाल
सर्वांगीण विकास के लिये उद्योग उत्पादकता केन्द्रित बनाने का सुझाव
है, वस्तुतः महात्मागांधी का समग्र शैक्षिक चिन्तन आर्थिक जनतन्त्र के नि
के स्वप्न पर आधारित था। क्या गांधी शताब्दी के इस महान पर्व पर हम
स्वप्न को साकार करने की शपथ ले सकेंगे ?

क्या हम भावी भारत को स्वावलम्बी बनाने की प्रतिज्ञा करेंगे ?

गांधीजी को मैं यों जानता हूँ और मानता हूँ

—डॉ. शिवकुमार शर्मा

महात्मा गांधी ने अनेक बातें कही हैं। उन्होंने देशवासियों को और समस्त मानवता को अनेक बातें बतलाई हैं। लोगों ने भी उनके बाबत बहुत कुछ कहा है और लिखा है। महात्मा जी ने अपने जीवन काल में कई बड़े काम किये थे। अंत में वे ऐसे ही काम करते हुए शहीद भी हुए। महात्मा गांधी के ऐसे सर्वतोन्मुखी कर्तृत्व और व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विवेचन किसी एक सामान्य व्यक्ति के लिये संभव नहीं है परन्तु इस सारी स्थिति का एक दूसरा भी पक्ष है। भारत का और क्या विदेशों का कोई भी नागरिक, जो महात्मा को जानता है उससे अगर महात्मा के बाबत पूछा जावे तो वह थोड़े में जैसे वह जानता है और समझता है कह देगा। लेखक ने भी महात्मा गांधी को अपने तरीके से जाना है और माना है। इसी बात को यहाँ व्यक्त करने का यत्न किया गया है।

महात्मा जी के सम्पूर्ण जीवन पर अगर दृष्टि डाली जावे तो स्पष्ट होता है कि वे जो कुछ कहते थे वही करते थे। दूसरों के लिये कोई और, और अपने लिये कोई और बात, उन्होंने कभी नहीं कही। उन्होंने अछूतोद्धार की बात कही तो खुद उन्होंने यह काम सबसे पहले शुरू किया और इस तरह किया कि स्वयं हरिजन बस्ती में जा बसे। अगर उन्होंने कहा कि देश की शिक्षा, बुनियादी शिक्षा हो तो पहले अपने खुद के बच्चों पर प्रयोग करके

देखा। मगर उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सत्याग्रह करो तो वे प्रथम सत्याग्रही बने। जब उन्होंने कहा कि दरिद्रनारायण की पूजा करो तो वे इस काम में ऐसे जुटे कि स्वयं दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि हो गये। वे निस्वार्थ भाव से नीति के स्वय पालन करने को और दूसरों को धोखा न देने को बहुत महत्व देते थे। कथनी और करनी में अन्तर न होने देना इन्हीं सूत्रों का उनके जीवन का क्रियात्मक पक्ष था। इस विषय में उनका खुद का कथन यह था कि ऐसा तब होता है जब मनुष्य अपने पर काबू पा लेता है।

गांधी जी ने अपने पर काबू पा लेने के अतिरिक्त देश के लिये जो प्रमुख कार्य किया वह था ऐसे असंख्य व्यक्तियों का निर्माण जो भारत के स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा के रूप में और स्वतंत्रता के पश्चात् उस स्वतंत्रता के संरक्षक के रूप में आज भी कार्य कर रहे हैं। किसी भी देश का धन उनके नागरिकों की अन्यों से काम लेने की शक्ति ही है। इसी शक्ति के आधार पर एक व्यक्ति नेतृत्व के गुणों से सम्पन्न माना जाता है और दूसरा इन गुणों से रहित। महात्मा गांधी स्वयं कहते थे "यदि हम यह मानलें कि आदमियों से काम लेने की शक्ति ही धन है। तो हम यह भी निश्चित ही कह सकते हैं कि वे आदमी जिस परिणाम में चतुर और नीतिमान होंगे उसी परिणाम में दौलत बढ़ेगी। इस तरह विचार करने पर हमें मालूम होगा कि सच्ची दौलत सोना चाँदी नहीं, बल्कि स्वयं मनुष्य ही है। .... कोई समय ऐसा भी आ सकता है जब इंगलैंड गोलकुण्डे के हीरों से गुलामों को सजाकर अपने वैभव का प्रदर्शन करने के बदले यूनान के एक सुप्रसिद्ध मनुष्य के कथनानुसार अपने नीतिमान महापुरुषों को दिखा कर कहे—यह मेरा धन है'। इसी विचार के आधार पर यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि धन की खोज धरती के भीतर नहीं करनी चाहिए वरन् मनुष्य के हृदय में की जानी चाहिए। उसमें निहित प्रतिभा, गुण, और स्थान के आधार पर उसे काम करने और काम ले पाने के लिए तैयार करना चाहिए। शायद यही काम दुनियाँ में सबसे बड़ा काम भी है। महात्माजी ने अपने जीवन में भारत के विभिन्न प्रान्तों और राज्यों से व्यक्तियों का चयन किया। स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व दे सकने का उन्हें प्रशिक्षण दिया। उन्होंने यह कार्य इतनी दक्षता से किया कि जब भारत को प्रान्तीय स्वराज्य या पूर्ण स्वराज्य प्राप्त हुआ तो अधिकांशतः नेता एवं मन्त्री महात्माजी के सम्पर्क में आए हुए और उनके द्वारा बनाए गए व्यक्ति ही थे। महात्माजी ने इन्सानों के निर्माण का कार्य किया उनके मन में यह विचार कभी भी नहीं आया कि वे किसी आसन पर विराजें। अपने द्वारा निर्मित इन्सानों को आसनासीन होते देखने में ही वे

सच्चे सुख का अनुभव करते थे। वे वास्तव में जनतान्त्रिक नेता या प्रशासक नहीं थे वरन् निर्माता थे। वे अपनी एक पाठशाला चलाते थे जिसका उद्देश्य था संसार के सबसे बड़े जनतंत्र भारत, के लिए नेताओं का निर्माण करना। वे जीवन पर्यन्त इसी काम को करते रहे। इस कार्य के करने का क्रम ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा जिस-जिस जगह निर्बाध गति से चलता रहता है वहाँ का समाज सदा ही सुरक्षित रहता है और फलता फूलता है।

अपने पर काबू पाने और नेतृत्व की रचना के कार्य के अतिरिक्त तीसरा महत्वपूर्ण कार्य महात्माजी ने अपने आपको पूरी तरह जानने और पहचानने का किया था। वे अपने आपको जैसा जानते और पहचानते थे। उसी रूप में व्यक्त करने में भी नहीं हिचकते थे। उन्होंने अपने जीवन की गलतियाँ और असफलताएँ निःसंकोच होकर प्रकट की थीं। उनके व्यक्तित्व में जो-जो कमियाँ थीं उन्हें वे स्पष्ट शब्दों में कहा करते थे। एक बार उन्होंने यह भी स्वीकार किया था कि जिन-जिन कार्यों को मैं कर सकता हूँ उन्हें श्री नेहरू कर सकते हैं और जिन कार्यों को मैं नहीं कर सकता हूँ उन्हें भी श्री नेहरू कर सकते हैं। किसी एक दार्शनिक ने ठीक ही कहा है-संसार के समस्त व्यक्तियों को तीन भागों में बाँट कर समझा जा सकता है। प्रथम प्रकार के वे व्यक्ति हैं जो नहीं जानते हैं परन्तु जानते हैं कि वे जानते हैं-ऐसे व्यक्तियों से दूर रहना चाहिए। द्वितीय प्रकार के व्यक्ति वे हैं जो जानते हैं परन्तु नहीं जानते कि वे जानते हैं,-ऐसे व्यक्तियों को बतलाया जाना चाहिए कि वे जानते हैं और तृतीय प्रकार के व्यक्ति वे हैं जो जानते हैं और यह भी जानते हैं कि वे जानते हैं-ऐसे व्यक्तियों के पीछे-पीछे चलना चाहिए। महात्मा गांधी इस क्रम में तीसरे प्रकार के व्यक्ति थे। यह भी उनकी एक विशेषता थी कि जिसके कारण भारतवासियों ने उनके पीछे पीछे चलना स्वीकार किया। उन्हें अपना सर्वोत्कृष्ट नेता माना।

कथनी और करनी में समानता व्यक्तित्व का ऐसा चामत्कारिक गुण है जिसके प्रादुर्भाव पर व्यक्ति श्रद्धा का पात्र बनता है चाहे किसी भी स्तर या स्थिति में क्यों न हो। यह गुण व्यक्तित्व का एक पक्ष है। इससे उसको स्वयं को आदर मिलता है। दूसरों को ऐसे व्यवहार से प्रेरणा भी मिलती है यह सब कुछ परोक्ष रूप में ही होता है। इस गुण की बड़ी विशेषता यह है कि लोग, व्यक्ति की ओर आकर्षित होते हैं। लोगों से लगातार सम्पर्क की स्थिति स्वयम होती है। लोगों को प्रभावित करने, उन्हें काम करना सिखाने और प्रमुखतः काम लेना सिखाने के लिए यही महत्वपूर्ण स्थिति होती है। इसमें राष्ट्र, समाज, किसी विशेष स्थान या स्थिति के लिए किसी विशेष

काल में जिस प्रकार के इन्सानों की आवश्यकता होती है उनकी रचना एवं निर्माण संभव हो जाता है। इस रचना कार्य में रचयिता को अपनी शक्ति और सामर्थ्य का पूरा भान होना भी जरूरी है। जिसे यह भान पूरा-पूरा और सही होता है वही ऐसी महान् रचना का कार्य भी कर सकता है। वह इस क्रम को कई वर्षों तक लगातार चालू रख सकता है। इसके अभाव में लोग उससे दूर भागने लगते हैं या उसके निर्देशों को मानना या उसका अनुकरण करना छोड़ देते हैं।

अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि अपनी कथनी की व्यावहारिकता का प्रमाण खुद अपने जीवन से प्रदर्शित करते हुए जो मानवों के निर्माण का कार्य करता है, वह इस निर्माण कार्य में अपनी शक्ति और सामर्थ्य को सही-सही तोलता चलता है और इस क्रम में उसके सामने आने वाले वैयक्तिक लाभ से वंचित रहते हुए भी जीवन गुजार लेने की व्यवस्था कर लेता है वही इन्सान किसी राष्ट्र के जनजीवन का अभिन्न अंग बनकर अनन्त काल तक श्रद्धा और आदर का पात्र बना रह सकता है और अनन्त मानवता के लिए ध्रुव तारे की तरह प्रेरणा के स्रोत का रूप ग्रहण करता है। भारत को गांधीजी की सभी देन उपरोक्त गुणों में समाई सी लगती है।

फिर वह महात्मा गांधी हो या और कोई परन्तु जिसमें ये विशेषताएं होंगी वही उस काल, या स्थान का महात्मा गांधी होगा। इसके लिए जरूरी नहीं है कि वह गाधी की तरह लंगोटी पहनकर और घर छोड़कर जगह-जगह घूमता फिरे। वह किसी भी स्थिति में रहते हुए भी पूजनीय और महान स्वीकार किया जा सकता है।

गांधीजी को मैं सिर्फ इसी तरह जानता हूँ कि वे एक इन्सान थे और वह मानता हूँ कि उन्होंने उपरोक्त गुणों और व्यवहारों को अपने जीवन में उतार लिया अतः वे महात्मा गांधी बन गए। जो भी इन गुणों को अपने में उतार लेगा वही वैसा बनेगा—इसमें किंचितमात्र भी संदेह नहीं है।

राष्ट्रपिता और राष्ट्र-शिक्षक : गांधीजी

—भगवतीलाल व्यास

यह हमारे देश की गौरवशाली परम्परा रही है कि यहाँ प्रत्येक युग में ऐसे प्रखर व्यक्तित्वों का उदय हुआ है जो अपने युग के सर्जक होने के साथ-साथ युग शिक्षक भी रहे हैं। इसी परम्परा की एक कड़ी के रूप में हमारे सामने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का व्यक्तित्व आता है। वैसे पिता और शिक्षक के प्रथक दायित्व हैं उन्हें एक साथ निर्वाह करने में बहुत कम लोग सफल होते हैं। गांधीजी राष्ट्रपिता थे और राष्ट्रशिक्षक भी।

गांधीजी के व्यापक प्रभाव का श्रेय उनके व्यक्तित्व के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थियों को भी जाता है। उन परिस्थितियों को जिनमें उनका व्यक्तित्व-कञ्चन तप कर कुन्दन बना। उसमें ऐसा निखार आया कि वे जन-जन के पूज्य बन गये। महाराणा प्रताप के बाद स्वतन्त्रता की मशाल को थामने वाले गांधीजी का महत्व स्वातंत्र्य संग्राम के अजेय योद्धा के रूप में तो है ही किन्तु उसके साथ-साथ अहिंसक क्रान्ति, मानव-सेवा और विश्व-प्रेम की जो अलख उन्होंने जगाई उसने मानव-महत्ता को एक नये कोण से देखने की दृष्टि दी। परिणामस्वरूप सैकड़ों साहित्यिक कृतियों का जन्म हुआ जिनकी भावभूमि गांधीवाद से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित थी। गांधीजी के असहयोग आन्दोलन ने अनगिनत देशप्रेमी युवकों को प्रभावित किया और वे अपना अध्ययन, अध्यापन या व्यवसाय छोड़ कर उनके साथ

हो गये। कई साहित्यकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और राजनैतिक नेताओं की जीवनियां पढ़ते समय जब हम इस तथ्य पर विचार करते हैं तो अनायास एक प्रश्न मन में उभरने लगता है कि यदि गांधीजी असहयोग आन्दोलन न छेड़ते तो क्या होता! हमें आजादी स्वाधीनता की मंजिल इतनी जल्दी न मिली होती यह तो प्रत्यक्ष सत्य है ही किन्तु यह भी कम विचारणीय नहीं कि हमारा देश कई क्षेत्रों में और उत्कृष्ट प्रतिभाओं से वंचित रह जाता।

आज जब विश्व भर में गांधी शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है तो विशेष कर हमारे देश के संदर्भ में यह विचार करना असंगत न होगा कि उस अकेले व्यक्ति ने जहां एक ओर ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लिया वहां दूसरी ओर देश में व्याप्त वैचारिक जड़ता को नष्ट करने के लिये मोर्चा संगठित किया। इन दोनों क्षेत्रों में उन्हें सफलता मिली। स्वतंत्रता प्राप्त हुई और उसका परिणाम देश के जन साधारण की भोग्य वस्तु बनी। अब यह बात दूसरी है कि जन साधारण ने उसका उपभोग किस प्रकार किया। आज स्वतन्त्रता प्राप्ति के 22 वर्ष उपरान्त जब कुछ लोगों को यह कहते सुना जाता है कि "इस स्वतन्त्रता से तो हम परतन्त्र अच्छे थे।" तो सोचना पड़ता है कि आखिर उनके ऐसा कहने के पीछे क्या कारण है? स्वतंत्रता जब तक प्राप्त नहीं हुई थी हमारा साध्य थी। प्राप्त होने के पश्चात् यह एक साधन बन गई। साधन का उपयोग ही उसके अच्छे या बुरे परिणाम लाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है तो उसके लिये उत्तरदायी स्वतंत्रता न होकर उसके उपभोग का तरीका है जो हमारा स्वनिर्मित है। इसी प्रकार यदि वैचारिक धरातल पर भी हम गांधीजी को ठीक तरह न समझ पाएं और उनके विचारों का मनमाना अर्थ लगाने लगें तो दोष किसका होगा, यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। सच तो यह है कि गांधीजी ने जन-जन के लिये भौतिक एवं वैचारिक क्षेत्रों मे कल्याणकारी दिशा निर्देश दिये हैं। इसलिये वे युगों-युगों तक युग-सर्जक के रूप मे स्मरण किये जाते रहेंगे। भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में "....केवल कोरे नारे लगाने से नहीं, बल्कि रचनात्मक कार्यक्रमों से, साथ मिल कर कार्य करने की योग्यता के विकास से, कठिनाइयो से लोहा लेने से, और जो सफलता हमें प्राप्त हो उसे प्रेम-पूर्वक उदारता से आपस मे बांट देने से ही हमे राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। जब तक सभ्यता का चिन्ह संसार में रहेगा, गांधी का नाम आदर के साथ लिया जायगा।"

राजनैतिक स्वतंत्रता हमें मिली। अब उसकी रक्षा का प्रश्न उपस्थित है। ऊपर वैचारिक-क्रान्ति की चर्चा हुई है। समाज में इस क्रान्ति के बीज-वपन का दायित्व शिक्षक का है। इस दृष्टि से यदि गांधीजी को राष्ट्रशिक्षक कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। फिर उन्होंने तो सन् 1937 में शिक्षा की जो ठोस योजना प्रस्तावित का वह हमारी परिस्थितियों और जरूरतों से बहुत मेल खाती थी। शिक्षण की सबसे उत्तम विधि कर्म द्वारा शिक्षा' है। गांधीजी का सम्पूर्ण जीवन ही इस विधि का उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने जो कहा वह किया। वाणी और कर्म का ऐसा समन्वय विरले ही महापुरुषों में पाया जाता है। वे केवल अक्षरज्ञान अथवा पुस्तकीय शिक्षा के विरुद्ध थे। यही कारण है कि उनके द्वारा समर्थित शिक्षा प्रणाली में शरीर-श्रम, आत्म निर्भरता, उद्योग-केन्द्रितता, चरित्र-निर्माण, नैतिकता और धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गांधीजी के लिये शिक्षा एक मुखौटा नहीं अपितु जीवन का अंग थी। मुखौटे को आवश्यकतानुसार धारण किया जा सकता है तथा परिस्थितियोंवश उतार कर एक ओर रखा जा सकता है, अंग को नहीं। शिक्षा का अर्थ अनिवार्य रूप से मनुष्य को संस्कारवान बनाना है, उसके रक्त में रमजाना है। आधुनिक शिक्षा इस कसौटी पर कहां तक खरी उतरती है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। वर्तमान प्रणाली में बालक के समक्ष शिक्षारंभ से शिक्षा समाप्ति तक समस्याओं का एक लम्बा तांता आरंभ हो जाता है। जैसे-तैसे वह इस दुर्गम मार्ग को पार कर भी लेता है तो व्यवसाय की समस्या उसके सामने विकराल रूप धारण कर उपस्थित होती है।

इस प्रणाली में शरीर-श्रम को कोई महत्ता न मिलने के कारण बालक के मन में इसके प्रति एक हेय भाव उत्पन्न हो जाता है जो उसके भावी-जीवन में प्रति-पग बाधक सिद्ध होता है। परिणाम यह होता है कि शिक्षा समाप्ति पर प्रत्येक अभ्यार्थी सफेद पोश और आरामदेह व्यवसाय की ओर लपकता है। सफेद पोशी के इस अंध मोह के कारण उसे न जाने कितनी काजल की कोठरियों से गुजरना पड़ता है। यही समय होता है जब उसे आदर्श और यथार्थ का कटु अन्तर ज्ञात होता है। उसकी आत्मा इसी जगह से पतन का मार्ग पकड़ती है और वह तमाम उचित अनुचित हथकण्डों का प्रयोग करना सीखता है। इतना होने हुए भी जब हम अपने देश के शिक्षित बेरोजगारों की संख्या पर दृष्टि डालते हैं तो निराशा होना स्वाभाविक है। ये आंकड़े प्रतिवर्ष भयंकर रोग के कीटाणुओं की तरह बढ़ते चले जाते हैं। वर्षों से यह क्रम चल रहा है और मजे की बात यह है कि इस शिक्षित बेकारों के ढेरों

प्रश्नों के उत्तर आज की शिक्षा प्रणाली के पास नहीं है। गांधीजी की शिक्षा प्रणाली के पास संभवतः इस ढेर में से अधिकांश प्रश्नों के उत्तर थे।

सम्पूर्ण गांधी-शिक्षा-दर्शन को समाहित करना तो इस लघु निबन्ध में सम्भव नहीं है फिर भी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की दो ज्वलन्त समस्याओं के सम्बन्ध में गांधीजी के विचारों को उद्धृत करने का लोभ संवरण भी नहीं किया जा सकता।

विद्यार्थी और अनुशासन : आज विद्यार्थियों में अनुशासन के प्रति जैसी अवज्ञा देखी जाती है उससे कई बार देश के भविष्य के बारे में तरह-तरह की आशंकाएं मन में उठने लगती हैं। यही पीढ़ी कल देश की बागडोर अपने हाथ में सम्भालने वाली है, तब क्या होगा इस देश का? वस्तुतः विचारणीय यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में उन बातों का समावेश किस सीमा तक किया गया है जो अनुशासन के लिये आवश्यक हैं? आज हम आये दिन छोटी-छोटी बातों पर स्कूलों और कालेजों मे प्रदर्शनों, हड़तालों और आक्रोश व्यक्त करने के अन्य माध्यमों की खबरें पढ़ते या सुनते हैं। इस आक्रोश के कारणों की गहराई में जाने से विषयान्तर का भय है अतः इस प्रकरण को हम यहीं समाप्त करते हैं। हड़ताल अथवा प्रदर्शन निस्संदेह रूप से जागृत मानस की अभिव्यक्ति है और अपने सही रूप में कभी बुरी नहीं कही जा सकती। स्वतन्त्र देश के विद्यार्थी को पूरा अधिकार है कि वह अपने उचित साध्य की प्राप्ति के लिये इन साधनों का आश्रय ले। गांधीजी ने 'यन्ग इंडिया' के दिनांक २४-१-२६ के लेख में स्पष्ट कहा है—"छात्रों का आत्ममान ज्यों-ज्यों अधिक होगा और राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी का उनका ज्ञान बढ़ेगा, त्यों-त्यों भारत में ऐसे अवसर अक्सर आएंगे।" किन्तु साथ ही विद्यार्थियों को उन कारणों को भी ध्यान में रखना चाहिये जिनके कारण वे हड़ताल या प्रदर्शन करने जा रहे हैं। उन्होंने इसी पत्र में हड़तालों के औचित्य के सम्बन्ध मे टिप्पणी करते हुए लिखा था—',.......... मजदूरों की हड़ताल ही काफी बुरी चीज होती है, विद्यार्थियों की हड़ताल तो और भी खराब बात है भले उसकी घोषणा उचित कारणों से हुई हो या अनुचित। वह ज्यादा बुरी इसलिए है कि उसके परिणाम अन्त में ज्यादा बुरे होते हैं और इसलिए कि उसमें जो दो पक्ष भाग ले रहे हैं उनकी एक विशेष प्रतिष्ठा है। मजदूर अशिक्षित होते हैं, विद्यार्थी शिक्षित होते हैं और उन्हें हड़ताल करके कोई अधिक लाभ उठाना नहीं होता। इसी प्रकार मालिकों की भांति शिक्षा संस्थाओं के संचालकों का विद्यार्थियों के हितों से संघर्ष नहीं होता। साथ ही विद्यार्थी-

हड़ताल के दूरवर्ती परिणाम हो सकते हैं और वह असाधारण परिस्थिति में ही उचित हो सकती है।"

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि गांधीजी हड़ताल के विरोधी नहीं हैं लेकिन वे कारण के औचित्य के पक्षपाती अवश्य हैं। अनुचित, अपर्याप्त और साधारण कारणों के पीछे की गई हड़तालें नुकसान के अलावा कुछ नहीं दे सकती।

छात्रों में अनुशासनहीनता को गांधीजी की विचारधारा कभी प्रश्रय नहीं देती क्योंकि उन्होंने अपने भाषणों और लेखों में कई स्थानों पर छात्र को 'अनुशासन की मूर्ति' कहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि समूचा छात्र-जीवन ही अनुशासन सीखने का समय है भूलने का नहीं।

भाषा समस्या—वैसे तो यह समस्या संपूर्ण राष्ट्र के जीवन के साथ जुड़ी हुई है किन्तु शिक्षा के क्षेत्र से इसका घनिष्ठतम संबंध है। शिक्षा में, चाहे वह किसी भी स्तर की क्यों न हो भाषा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा ज्ञान का हस्तांतरण सभव है। अब प्रश्न यह है कि माध्यम क्या हो? इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि शिक्षा के माध्यम के लिए मातृभाषा से उत्तम कोई विकल्प नहीं हो सकता। बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में अपने प्रवचन में गांधीजी ने कहा था--"हमारी भाषा हमारा अपना प्रतिबिम्ब होती है और अगर आप मुझसे यह कहें कि हमारी भाषाएं इतनी गरीब हैं कि उनमें उत्तम विचार प्रकट नहीं किये जा सकते तो मैं कहता हूं कि हमारी हस्ती जितनी जल्दी मिट जाय उतना ही हमारे लिए अच्छा है।" इस कथन से शिक्षण माध्यम के रूप से मातृभाषा के उपयोग संबंधी गांधीजी के स्पष्ट विचार प्रकट होते हैं। इसी प्रकार के विचार उन्होंने 'हरिजन' के 25-8-1916 के अंक मे प्रकट किए थे--"मेरी मातृभाषा में कितनी ही कमियां हों फिर भी उससे अपनी माता की छाती की तरह चिपटा रहूंगा। वही मुझे प्राणदायक दूध दे सकती है।"

माध्यम-भाषा की तरह ही राष्ट्रभाषा के संबंध में भी गांधीजी के विचार सुस्पष्ट हैं। राष्ट्रभाषा की उन्होंने निम्नांकित कसौटी स्थिर की है—

1. सरकारी कर्मचारियों के लिए सीखने में आसान होनी चाहिए।

2. उस भाषा में भारत का आपसी धार्मिक, व्यापारिक और राजनैतिक काम काज संभव होना चाहिए।

3. सारे देश के लिए उसका सीखना सरल होना चाहिए।

4. वह भारत के अधिकांश निवासियों की बोली होनी चाहिए।

5. इस प्रश्न का विचार करते समय स्थायी या अस्थायी परिस्थितियों पर ज़ोर नहीं देना चाहिए।

इस कसौटी पर उन्होंने हिन्दी को ही राष्ट्र भाषा के पद के सर्वथा उपयुक्त माना है। परन्तु गांधीजी ऐसी हिन्दी के पक्षधर थे जो न तो अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ होकर आम जनता की समझ से बाहर हो और न इतनी फारसी युक्त उर्दू शब्दों को समाहित किए हो कि उसे हिन्दी कहते हुए भी संकोच का अनुभव होने लगे। दूसरे शब्दों में गांधीजी ऐसी सरल हिन्दी को इस पद पर प्रतिष्ठित करने के उपयुक्त समझते थे जो जनसाधारण के लिए आसानी से बोधगम्य हो सके।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है यहां बानगी के तौर पर शिक्षा से संबद्ध इन दो समस्याओं का ही उल्लेख कर संतोष करना पड़ रहा है अन्यथा शिक्षा का शायद ही ऐसा कोई पक्ष रहा हो जिस पर गांधीजी ने अपने विचार प्रकट करते हुए व्यावहारिक हल न सुझाए हों।

उपर्युक्त विवेचन से सम्भवतः यह स्पष्ट हो गया होगा कि महात्मा गांधी को जहां एक ओर हम राष्ट्र-सर्जक अथवा राष्ट्रपिता के रूप में पूजते हैं वहां दूसरी ओर उनके राष्ट्र शिक्षक के रूप का भी समुचित आदर होना चाहिए। उनके राष्ट्रशिक्षक के रूप को भली भांति समझने और उनके विचारों को कार्यान्वित करने से बढ़ कर उनके प्रति शिक्षा जगत की और कोई श्रद्धांजलि नहीं हो सकती।

गांधी और आचरण

—ज्ञान भारिल्ल

इस विश्व में 'महात्मा' की उपाधि प्राप्त करना कोई सहज कार्य नहीं है। सहस्रों वर्ष पूर्व बुद्ध और ईसा जैसे महापुरुषों को 'महात्मा' कहा गया तथा बीसवीं सदी में गांधीजी को यह संज्ञा दी गई है। इस महानतम गौरव की प्राप्ति के पीछे इन महापुरुषों का अनुकरणीय आचरण ही सर्वप्रमुख कारण समझा जाता है। इन महात्माओं ने जो कुछ कहा, वही व्यवहार में करके दिखाया। वस्तुतः कथन और आचरण की एकता से ही व्यक्ति, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, स्वकीय जीवन की सार्थकता को तो प्राप्त कर ही सकता है, साथ ही वह सहजनों एवं अनुगामियों के लिए जीवन-पद्धति का मार्ग भी प्रशस्त कर देता है। महात्मा गांधी ने इस आदर्श जीवन-सूत्र को अच्छी तरह समझ लिया था। अपने सुदीर्घ जीवनकाल में इसको अपने आचरण में भी उतार लिया था।

इस सूत्र का मूल आधार है 'सत्य'। गांधीजी ने सर्वप्रथम 'सत्य' के अन्वेषण एवं अनुसंधान पर ही बल दिया है। जब तक 'सत्य क्या है' यही ज्ञात न हो, तब तक व्यक्ति का भटकना स्वाभाविक है। यह सत्य आत्मा की मूल ध्वनि होती है। स्थूल या सूक्ष्म किसी भी समस्या के प्रस्तुत होने पर धर्म, सम्प्रदाय अथवा राजनीति आदि पूर्वाग्रहों से पूर्णतः स्वतन्त्र एवं विमुक्त आत्मा जो समाधान या उत्तर दे, वही सत्य होता है और उसी का अनुसरण करना चाहिए। गांधीजी हर कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व एवं बाद में भी आत्मा की इस ध्वनि को सुनने का प्रयत्न करते रहते थे। वे मानते थे कि

मानव होने के कारण उनसे भूल हो सकती थी, किन्तु भूल का ज्ञान होते ही वे इसे तुरन्त स्वीकार कर लेते थे। भूल को स्वीकार करना एक गुण है और यह गुण महानता का परिचायक होता है। गांधीजी में यह गुण असीम मात्रा में था। भोंडी से भोंडी त्रुटि को स्वीकार कर लेना उनके लिए बहुत सहज कार्य था। वस्तुतः उन्हें सत्य में आस्था थी। सत्य से डिगने पर उन्हें आत्म-पीड़ा होती थी और पुनः सत्य के मार्ग पर चलने से पूर्व वे इसका समुचित प्रायश्चित भी करते थे। वे जानते थे कि व्यक्ति जैसे-जैसे सत्य के निकट पहुंचता है, वैसे वैसे उसे स्वकीय अशक्तता का ज्ञान होता जाता है। अतः उन्होंने यह कहा था कि "खाते, पीते, बैठते, सोते, सूत कातते या अन्य कार्य करते समय जो केवल सत्य का चिन्तन करता है, वह अवश्य सत्यमय हो जाता है और जब किसी के अन्दर सत्य का सूर्य सम्पूर्णतः प्रकाशित होता है, तब वह प्रकाश छिपा नहीं रहता।" उन्होंने कई बार महानतावश यह भी स्वीकार किया था कि उनमें ऐसा सत्य नहीं आ पाया था, पर वे इस मार्ग पर चल अवश्य रहे थे। जब कभी कोई व्यक्ति उनके सम्मुख असत्य बोलता था तो वे उस पर क्रुद्ध नहीं होते थे, क्योंकि उनकी धारणा के अनुसार उनके अन्तर में ही कहीं असत्य रह गया होगा।

सत्य की सहचरी अहिंसा ही हो सकती है, यह सनातन मान्यता है। गांधीजी को इस अहिंसा पर सर्वाधिक आस्था थी। वे अहिंसा को अपना सबसे बड़ा अस्त्र मानते थे। स्वकीय जीवन में तो उन्होंने अहिंसा को आत्मसात कर ही लिया था, दूसरों को भी वे पूर्ण अहिंसा का पालन करने का परामर्श देते थे। जो व्यक्ति अहिंसा का पालन नहीं करता था, उसकी वे सदा ही भर्त्सना करते थे। भारत के सुदीर्घ स्वातन्त्र्य-आंदोलन में उन्होंने अहिंसा के त्याग की बात कभी नहीं की, क्योंकि इसकी शक्तिमत्ता में उन्हें पूर्ण विश्वास था। कायिक हिंसा की तरह वाचिक हिंसा अर्थात् गाली-गलौज को भी वे निंद्य समझते थे। उन्होंने स्पष्टतः कहा था कि "अगर असहयोगी लोग गालियों का व्यवहार करते हैं तो वे निस्सन्देह हिंसा करते हैं और अहिंसा के व्रत का भंग करते हैं।" वस्तुतः अहिंसा इसलिए उचित है कि उसके सम्मुख हिंसा या वैरभाव टिक नहीं सकता। शस्त्र-बल के द्वारा जिन-जिन अर्थों की सिद्धि हो सकती है, वे सब अहिंसा बल से भी साध्य हो सकते हैं। जो शस्त्र-बल का उपयोग करते हैं, वे भी तो शूर कहलाते हैं, जब बलवान से संग्राम करते हैं। पर अहिंसावादी तो शस्त्रास्त्र के बिना ही जूझता है, इसलिए उसके बल की तो सीमा ही नहीं है। इस तथ्य को गांधीजी ने पूर्ण रूप में समझ लिया था और उनका सम्पूर्ण जीवन वास्तविक अहिंसा का ज्वलंत इतिहास है।

गो-रक्षा के सन्दर्भ में अहिंसा का एक महत्वपूर्ण रूप यहाँ पर विचारणीय है। यह तो सबको पता है कि गांधीजी एक महानतम गो-भक्त थे। उनके सेवाश्रम में बहुत बड़ी गोशाला थी और इसकी सुव्यवस्था के लिए उन्होंने श्रीवलवन्तसिंह जैसे विशेषज्ञ को नियुक्त कर रक्खा था। वैसे भी वे प्रत्येक हिन्दू को गो-रक्षा एवं गो-सेवा का सत्परामर्श देते रहते थे, किन्तु वे इस बात को कभी अच्छा नहीं समझते थे कि यदि कोई मुसलमान, जिनके धर्म में गोवध निषिद्ध नहीं है, ईद के दिन गोवध करता हो तो कोई हिन्दू उस मुसलमान को मारने के लिए हाथ उठाए। वस्तुतः गांधीजी की इस विचित्र सी मान्यता के पीछे अहिंसा ही क्रियाशील थी। वे चाहते थे कि मुसलमानों को गोवध न करने के लिए शांतिपूर्वक समझाना उचित है, न कि हिंसा का आश्रय लेना। यदि हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति वास्तविक सौहार्द एवं सहिष्णुता होगी तो मुसलमान स्वयं ही गोवध करना बन्द कर देंगे। गो की तरह अन्य पशुओं की रक्षा करना भी वे अहिंसा के अन्तर्गत एक आवश्यक कर्तव्य समझते थे। इसी आधार पर वे मांस-भक्षण का निषेध करते थे, क्योंकि इसमें किसी न किसी पशु-पक्षी की हत्या की जाती है। वे स्वयं भी कभी मांस-भक्षण नहीं करते थे, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

सादगी गांधीजी की एक अनन्य विशेषता थी। तड़क-भड़क की तो बात ही क्या, वे अनेक आवश्यक वस्तुओं का परित्याग करने से भी नहीं हिचकते थे। जीवन का अधिकांश उन्होंने लंगोटी पहनकर ही गुजारा था।

गोलमेज-सम्मेलन के समय लंदन जाने पर भी उन्होंने ओवर-कोट आदि पहनना स्वीकार नहीं किया। सम्भवतः उन्हें अधिक वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि उन्होंने शीत और ग्रीष्म दोनों को ही सहन करने का सम अभ्यास कर लिया था। दैनिक उपयोग की उनकी वस्तुएं बहुत कम थीं। इनमें किसी वस्तु के महंगी होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। एक बढ़िया कलम तो उन्होंने गहरे पानी में फेंक दिया था, क्योंकि वह महंगा और विदेशी था।

विदेशी वस्तुओं, विशेषतः वस्त्रों का बहिष्कार उनकी आर्थिक नीति पर आधारित था। वे जानते थे कि जब तक विदेशी वस्त्रादि का पूर्ण बहिष्कार नहीं होगा, तब तक भारतीय उद्योगों, विशेष रूप से ग्राम-उद्योगों का विकास नहीं हो पाएगा। विदेशी आयात के कारण देश का स्वर्ण-धन तो बाहर जाता ही है, साथ ही देश में निर्धनता और बेकारी भी बढ़ती है। विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का जो आंदोलन गांधीजी ने चालू किया था, उसका भारतीय

स्वातन्त्र्य संग्राम में बहुत बड़ा महत्त्व है। इसमें उन्हें जन-जन का समर्थन मिला था। विदेशी वस्त्रों के स्थान पर खादी का प्रयोग भी गांधीजी ने ही चालू किया। सभी भारतीयों को उन्होंने खादी पहनने के लिए प्रेरणा दी। उन्होंने इसकी द्विविध उपयोगिता भी बताई। एक तो खादी गर्म होती है, दूसरे यह टिकाऊ भी अधिक है। यदि किसान स्वयं अपने खेत में कपास उगाए, उसे कातें और बुनकर वस्त्र बनाकर पहनें तो यह न केवल सस्ते से सस्ता सौदा होगा बल्कि टिकाऊ भी। इससे देश का धन देश में ही रहेगा और ग्रामोद्योगों को अत्यधिक सहायता मिलेगी। इसके लिए गांधीजी ने चर्खा चलाना प्रत्येक भारतवासी के लिए आवश्यक बताया। उन्हें सम्भवतः यह प्रेरणा गीता में उल्लिखित योगेश्वर के कर्म समर्पण से प्राप्त हुई थी। उनके द्वारा संचालित अनेक आन्दोलनों में चर्खा-आन्दोलन का स्थान अत्यन्त प्रमुख है। इससे न केवल गांवों, बल्कि शहरों तक में चर्खे का प्रचार हो गया। बाद में तो चर्खे के निर्माण के सम्बन्ध में भी निरन्तर प्रयोग किए गए और आजकल इसका सर्वाधिक विकसित रूप अम्बर-चर्खा है। यद्यपि भारतीय मिलों के बने सूती या ऊनी वस्त्रों की तुलना में खादी के वस्त्र आज भी कुछ महंगे होते हैं, किन्तु अधिकतम संख्या में लोगों को रोजगार देने के लिए खादी का प्रयोग ही श्रेयस्कर है। यह एक अच्छी बात है कि आज का शासन-तन्त्र खादी ग्रामोद्योग के प्रोत्साहन के लिए अनेकविध योजनाओं को क्रियान्वित कर रहा है। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में खादी का प्रयोग बढ़ा नहीं, घटा ही है, क्योंकि भारत में ही बन रहे विविध वस्त्र सस्ते और टिकाऊ तो हैं ही, साथ ही उनमें कुछ भव्यता भी रहती है। इनका निर्यात भी होने लगा है। इसके पीछे एक अन्य कारण यह भी है कि अच्छे बुनकरों ने अपना पैतृक धंधा छोड़कर नागरिकता की ओर कदम बढ़ाना शुरू कर दिया है। अब बहुसंख्यक गांवों में एक भी जुलाहा या बुनकर मिलना कठिन है। गांवों से नगरों की ओर भागने की यह प्रवृत्ति बहुत ही गलत है। गांधीजी ने इसका पूर्व अनुमान करके ही खादी को तन और मन दोनों से अपनाने की बात कही थी। वे स्वयं तो आजीवन चर्खा कातते रहे और खादी का ही वस्त्र धारण करते रहे। भारतीय कांग्रेस के लाखों सदस्य आज भी खादी के वस्त्र पहनते हैं। यदि अन्य राजनैतिक दलों ने भी खादी पहनने पर इतना बल दिया होता तो संभवतः भारतीय मिल के बने वस्त्र केवल निर्यात के ही काम आते।

अस्पृश्यता भारत के लिए अभिशाप रही है। इसे कुछ या बहुत कुछ अंशों में दूर करने का श्रेय गांधीजी को ही है। उन्होंने शूद्रों को हरिजन

कहा और सवर्णों के तुल्य दर्जा भी दिया। वे इस बात को कभी नही मान पाए कि मानव मानव मे कोई मूलभूत अंतर होता है। कर्मगत भिन्नता के आधार पर किसी को अस्पृश्य घोषित करना उसके प्रति अन्याय ही है। हिन्दू शास्त्रो में भी अस्पृश्यता की बात उत्तरकालीन प्रतीत होती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए गांधीजी ने हरिजनोद्धार का कार्य हाथ में लिया और जीवन-पर्यंत उनकी उन्नति का उपाय सुझाते रहे। चूंकि मेहतर का कार्य समाज मे हीनतम समझा जाता है, अतः गांधीजी ने स्वयं भी यह कार्य करके अन्य लोगों को प्रेरणा दी।

यह सत्य है कि प्राचीन संस्कारों के कारण हिन्दुओं में इसके विरुद्ध कड़ी तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई, किन्तु शनैः शनैः यह विरोध कम होता गया है और आज के दिन तो यह विरोध नाममात्र को रह गया है। अब सामान्य भारतीय होटलों और रेस्तोंरा में खाते-पीते समय बैरा की जातपात नहीं पूछते। रेल-यात्रा के समय पानी पिलाने वाले का हरिजन होना भी उन्हें सहन हो गया है। मन्दिरों में उनका प्रवेश होने लगा है। हिन्दू-समाज मे यह अद्भुत क्रान्ति गांधीजी के सत्प्रयासों के कारण ही संभव हो पाई है। सच ही वे हरिजनों की दीन दशा से संतप्त रहते थे और उनकी दशा सुधारने के लिए उन्होंने एक तरह से अपना जीवन-दान कर रखा था। उनकी स्वर्गस्थ आत्मा इन हरिजनों की कुछ सुधरी हुई स्थिति तथा अस्पृश्यता के आंशिक उन्मूलन से अवश्य ही प्रसन्न हो रही होगी।

जहाँ तक शराबखोरी, वेश्यागमन तथा अन्य अनैतिक बुराइयों का सम्बन्ध है, गांधीजी का कहना था कि ये सामाजिक कुकृत्य हैं। इनको यथाशीघ्र समाप्त कर देने [illegible] सदा ही प्रतिबद्ध रहे थे। गांधी जी की इस हार्दिक इच्छा के कारण [illegible] मद्य निषेध की ओर केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारों का ध्यान जाता रहा है और इस गांधी शताब्दी वर्ष में कई राज्यों में मद्य-निषेध-सम्बन्धी महत्वपूर्ण कानून भी बने हैं। यदि समस्त भारत में पूर्ण मद्य-निषेध लागू हो जाए तो गरीब लोगों के आर्थिक जीवन में सुधार होगा और विदेशी शराबों के आयात के कारण देश का धन बाहर नहीं जा सकेगा। वेश्यावृत्ति पर भी गांधीजी का ध्यान गया था। उन्होंने १२ वर्ष से भी कम उम्र की वेश्याओं को देखकर हार्दिक वेदना का अनुभव किया था और इस अनैतिक व्यापार को शीघ्र ही बन्द करवाने का संकल्प भी व्यक्त

के लिये ही सब अंगों की शक्ति को लगाना चाहिये। मेरी एक ही इच्छा है कि इस देश की आध्यात्मिक शक्ति हो।"

और यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि गांधीजी ने जिस 'आत्मा' के लिये ढेर-सा बखेड़ा किया, वह आत्मा नामक वस्तु आज मर गई है, और यदि कहीं किसी कोने में पड़ी सांस गिन रही है, तो उसे नींद की गोलियाँ दे कर चिरनिद्रा में निमग्न रखने का सबल सचेष्ट प्रयास हो रहा है।

आज हमारे देश में अनेक संकट हैं। अनुशासन का संकट, साम्प्रदायिकता का संकट, आक्रमणों का संकट, आर्थिक संकट, बेकारी का संकट, भाषा का संकट, राजनीतिक अस्थिरता का संकट, आदि अनेकानेक विकट संकट मुंह बाए खड़े हैं। मेरे विचार में इन सब संकटों के मूल में विद्यमान है संकट अनास्था का।

हमें स्वतन्त्रता मिली और उसके साथ बहुत कुछ मिला। बहुत कुछ निर्माण हुआ। बांध बने, नहरें बनीं, सड़कें बनीं, द्रुतगामी वाहन बने, कारखाने खुले, शस्त्रास्त्र सजे, संविधान बना, विधि और विधायक बने, परन्तु लोकमानस के क्षितिज में आस्था के आलोक का उदय नहीं हुआ। प्रखर-भास्कर-कराक्रान्त नभोमण्डल में घनघोर घटाएं घिरीं, घर्घर घोष हुआ, विद्युत् का गर्जन-तर्जन हुआ, पंख फैला कर मोर चिल्लाए परन्तु मेघों का हृदय न पसीजा। निदाघ दग्ध राष्ट्रधरा को स्नेहधाराभिषिञ्चन उपलब्ध न हुआ, उद्ग्रीव चातक का तृषार्त्त कण्ठ एक बूंद को तरसता ही रह गया। युवा शक्ति में क्रान्ति का ज्वार आया, परन्तु आया वह अनास्था के विषगर्भ से, आस्था के सुधा-स्रोत से नहीं। विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय देश के सुदूर कोनों तक जा फैले, किन्तु व्याप्ति के साथ अव्याप्ति ने अपने पांव पसारे। साक्षरता फैलती गई, शिक्षा सिकुड़ती रही। गम्भीरता को विस्तार खा गया। रूप को फैशन निगल गया। राष्ट्र की अन्तश्चेतना की हुंकार अनास्था के अजगर की विषैली फुंकारों में विला गई।

और इसी अनास्थावृत्ति की देन है आज का नवयुवक — ऊंची हग पैंट, सफाचट चेहरा, पिचके गाल, धंसी आंखें, बिखरे बाल, एक हाथ में सिगरेट, दूसरे में फाइल, फाइल के आवरण में अर्द्धनग्न नवयौवना का मादक चित्र, मुंह में मस्ती, राह चलते सीटियां, फब्तियां, घुड़कियां, कहकहे। यह है उसका मुंह बोलता शब्द-चित्र हमारे भावी भाग्यविधाता का, स्कूल-कालेज के नवयुवक विद्यार्थी का। चाल-ढाल में, उठने-बैठने में, कहने-सुनने में एक

अजब अदा, विचित्र स्वर्णता, स्वार्थतः जनानापन। कहीं पारुष्य नहीं, पौरुष नहीं, बिहारी की नायिका की तरह सांस के साथ छः-सात हाथ आगे-पीछे सरक जाने वाली नजाकत उसमें कूट-कूट कर भरी गई है। हां पौरुष है— बड़ों की अवज्ञा में, गाली-गलौज में, सम्पत्ति के विनाश में, परम्पराओं और मर्यादाओं की अवहेलना में और प्रेरणास्पद श्रद्धाकेन्द्रों के उपहास में। किसी में भी उसे श्रद्धा नहीं, आस्था नहीं। धर्म-कर्म में, पूजा-पाठ में, मन्दिर-तीर्थों में, पण्डित-विद्वानों में, समाज-सेवकों में, राजनेताओं में, सभी में अश्रद्धा, सर्वथा अनास्था। यहां तक कि राष्ट्रगीत के समय कुछ सैकण्ड के लिये शान्त रहना भी नागवार गुजरता है उसे।

आखिर उसका भी दोष क्या? उसके चारों ओर वातावरण ही ऐसा है। सिनेमा ने, घासलेटी साहित्य ने, संगीत ने, रेडियो की विज्ञापन सेवाओं ने परम्परागत आस्थाओं व श्रद्धाकेन्द्रों को मर्माहत करते हुए केवल भौतिकता का और भौतिकता की औरस सन्तान नास्तिकता का बेतहाशा प्रचार-प्रसार किया। इस विषैले प्रचार से नई पीढ़ी को मुक्त रखने का प्रयत्न किया किसने? न समाज ने, न शिक्षा ने, न शासन ने। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में तत्वतः सम्बन्ध-सूत्र आस्था का होता है, वही सूत्र टूट गया, तो समाज एवं राष्ट्र का छिन्न विच्छिन्न होना कैसे रोका जा सकता है?

आज हमारा प्रगतिशील चिन्तक और प्रगतिशील नेता धर्म, परम्परा और आदर्श के नाम से बिदकता है। घबराता है कि कहीं उसे प्रतिगामी न समझ लिया जाए। परन्तु गांधीजी श्रद्धा को ही अधिक महनीय, अधिक वरेण्य मानते रहे हैं। बाल्यकाल मे गांधीजी भूत की कल्पना से बहुत डरते थे। एक बार उनके घर की नौकरानी ने उनसे कहा—भूत से क्या डरते हो, राम नाम लेने से भूत भाग जाते हैं। गांधीजी ने राम नाम लिया और उनके मन का भूत भाग गया। जीवन भर वे 'रघुपति राघव राजाराम' गाते रहे, 'रामधुन' उनका जीवन और प्राण बन गई। अन्तिम समय भी उनकी अन्तरात्मा 'हे राम!' कह कर परमसत्ता मे विलीन हुई। परम वैष्णव गांधी श्रद्धा और आस्था को कितना महत्व देते थे, यहां उनके विचार देखिये— "विद्वत्ता अनेक अवस्थाओं से पार करा सकती है, परन्तु मोह और संकट के सम्मुख वह निष्प्रभ बनती है। उस समय तो श्रद्धा ही तारणहार सिद्ध होती है।"

गांधीजी धर्मविहीन राजनीति के पक्ष में न थे। उनका कहना था— "धर्मविहीन राजनीति मुझे स्वीकार नहीं है। मेरी राजनीति धर्म की

साधना के लिये है। जिस राजनीति के लिए धर्म को छोड़ना पड़े, वह मृत्युगामी है। क्योंकि उसमें आत्मा का मरण है।"

और सचमुच आज की हमारी राजनीति मृत्युगामी है। धर्म विहीन राजनीति का भयावह दुष्परिणाम आज हमारे सामने है—राजनीतिक अस्थिरता के रूप में। अल्पावधि जनता का विश्वास अर्जित कर विधान सभाओं में जनप्रतिनिधित्व करने वाले विधायक भी जब गिरगिट की तरह रंग बदलें, रातों रात टोपी बदलें, आस्थाएं बदल दें, तब सामान्य व्यक्ति का तो कहना ही क्या ? दलबदल के दलदल में आकण्ठ निमग्न हमारा लोकतन्त्र आज कराह रहा है, छटपटा रहा है। "को जाने कल की, आज जो मिले वह भोगलो" यह भोगवादी मनोवृत्ति अनास्था और आत्मा में अविश्वास की भावना की उपज है। इस भोगवादी, घोर अनास्थावादी भूतदर्शन ने आज हमारे जन मानस पर व्यापक प्रभुत्व स्थापित करलिया है। इस भूतदर्शन ने परमपावन भारत भूमि में गगन-मण्डल को ऐसा तमसाच्छन्न किया है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता, मनुष्य को मनुष्य नहीं दिखाई देता।

ऐसी विकट स्थिति में अद्यतन दर्शनों में गांधी दर्शन ही ज्योतिर्मय मार्ग की ओर प्रेरित करने की क्षमता रखता है। परन्तु उधर देखने की फुर्सत किसे है ? आज गांधी 'पीर की मजार' मात्र है, जो सिजदे के लिए है, फूल मालाएँ चढ़ाने के लिए है, जिस पर फैलाई हुई चादर में राजनीतिक रेजगी इकट्ठी होती रहे। अनुकरण के लिए गांधी नहीं है, क्योंकि उनकी नीतियां कालक्रम में पिछड़ गई हैं। क्योंकि जमाना समाजवाद का है और गांधी व्यक्ति की बात करता है। जमाना राष्ट्रीयकरण का है और गांधी विकेन्द्रीकरण का समर्थक है। जमाना औद्योगिकीकरण का है, 'अर्थ' का है, 'बोतल' का है, और गांधी गांव की बात करता है, 'गीता' के गीत गाता है, और गाय की पूँछ पकड़ कर चलता है। इसलिए वह 'आउट ऑफ डेट' है, हम 'अपटूडेट' हैं। गांधी पैरों के बल चलता था, लकड़ी टेक कर चलता था, हम आकाश में उड़ते हैं, प्रगति की रफ्तार तेज हो गई है, जमीन पर पैर रख कर चलने की फुर्सत किसे है ?

अर्थ की अर्थवत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु एकान्त अर्थोपासना घोर अनर्थकारिणी सिद्ध हुई है और हो रही है। अर्थ जहां मानवजीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय का महत्वपूर्ण अंग है, वहां पुरुषार्थ महिमा को कलंक-कालिमा में डुबो देने की सर्वाधिक सशक्त प्रेरणा अर्थ में ही निहित है। विवेकशून्य अर्थलिप्सा एवं राज्यलिप्सा ने धर्म की, मानवता

की, राष्ट्र की और राष्ट्रीयता की सरे-आम खरीद-फरोख्त की है। अतः अर्थ को अनर्थकारी न होने देने के लिए समाज को, शिक्षा – जगत को, तथा शासन को कुछ करना चाहिये। हमने सब कुछ जुटा लिया और आस्था नहीं जुटाई तो कोई लाभ नहीं। हम निर्धनता से पीड़ित हैं, पश्चिमी देश समृद्ध हो कर भी अशान्त हैं। वे स्थायी शान्त गृहस्थ-जीवन को तरस रहे हैं। स्वच्छन्द जीवन और मुक्त काम का कुपरिणाम उनके सामने आया है—तलाक, तलाक और तलाक, हत्या और आत्महत्या सौभाग्य से भारत के जलवायु में ये रोग कीटाणु नहीं हैं। इन विदेशी बीमारियों को रोकना तो दूर, प्रगतिशीलता के नाम पर हम उनका आयात कर रहे हैं।

गांधी जन्मशती की मंगलमय वेला में आस्था के उस महान् अग्रदूत के जीवन से हम अमृतमय सन्देश ग्रहण करें—

जीवन में आस्था, धर्म में आस्था, मानव-मानव में आस्था। आइये, उस युग-पुरुष की हम सब वन्दना करें—

> "तुम सत्यसन्ध, तुम सत्य प्राण, तुम युगद्रष्टा स्रष्टा महान्,
> युग-युग से पीड़ित मानवता के तुम सम्बल, तुम परित्राण।
> तुम पाप-ताप-अभिशाप-सिन्धु में कूद पड़े बड़वानल से,
> तुम देते रहे सदा अमृत पर जग का करते गरलपान।
> हे महामनुज, हे महाप्राण!

गांधी-दर्शन एवं शिक्षा

—विजयसिंह लोढ़ा

यदि हम किसी भी देश के पिछले इतिहास पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि उस देश के बड़े-बड़े शिक्षा शास्त्रियों के मस्तिष्क में सदैव ही शिक्षा को लेकर नाना प्रकार के प्रश्न उथल-पुथल मचाते रहे हैं। शिक्षा क्या है? शिक्षा के द्वारा सर्वांगीण उन्नति कैसे हो सकती है?

हमारे देश की स्थिति किसी से छिपी नहीं है। यहां की आज की आवश्यकतायें क्या हैं। उन्हें कैसे पूरा किया जाय? शिक्षा उसमें क्या योग दे सकती है? शिक्षा के माध्यम से राम राज्य कैसे लाया जा सकता है? सदियों से गुलाम देश भारत को स्वतन्त्रता के वातावरण में लाने वाले महात्मा गांधी के मस्तिष्क में ये मूल प्रश्न घूमते रहे।

टैगोर ने सच ही कहा है—"अध्यापक पैदा होते हैं-बनाये नहीं जाते।" यह बात गांधी जी पर भी अक्षरशः लागू होती है। लेकिन कतिपय विद्वान् गांधी जी को आज भी शिक्षा के विचार विधाता नहीं मानते। मेरे विचार से यह धारणा ठीक नहीं है। यह तो चमकते सूरज को देख कर आंख मूंदने जैसा है।

आप स्वयं ही देखें गांधी ने देश के लोगों की हालत देखकर अपनी हालत भी उन्हीं जैसी बना ली। गाँवों के देश भारत की जनता के पास भरपूर खाने पहिनने को नहीं था, तो गांधीजी ने भी एक समय भोजन करना तथा एक लंगोटी धारण करना स्वीकार किया। इसी प्रकार जब गांधीजी ने देखा

भारत के नवयुवकों को सस्ते लिपिक बनाये जाने की शिक्षा दी जा रही है, तो उन्होंने असहयोग किया और उनकी आवाज में आवाज मिलाकर नवयुवकों ने कालेजों का बहिष्कार किया। यह घटना इस बात की पुष्टि करती है कि गांधीजी ने देश की आवश्यकता को समझ लिया था।

भारत ने वह जमाना भी देखा जब सात समुद्र पार से आकर अंग्रेजों ने यहां अपनी जड़ें जमा ली। आर्थिक क्षेत्र में खुलकर शोषण किया। भारत की जनता आराम तलबी के नशे में कुछ भी अनुभव न कर पायी। लेकिन इङ्गलैंड के 'ओवन' की भांति हमारे देश में भी एक महान् आत्मा ने जन्म लिया जिसने अपने यौवनकाल में ही गौरांग महाप्रभुओं की शोषण वृत्ति को भांप लिया और देखा किस प्रकार वे राज-सत्ता द्वारा धीरे-धीरे भारत भूमि का रस चूस-चूस कर जहाजों पर लादकर उसे विदेशों को ले जा रहे हैं। शिक्षा-उद्योग सभी का ह्रास हुआ। रक्त-शोषित जनता अस्थिपंजर के रूप में लड़खड़ाने लगी। लोगों पर पाश्चात्य संस्कृति का जादू असर कर गया। भारतीय समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया।

एक वह जो खान-पान रीति-रिवाज, रहन-सहन और बोल-चाल सभी में अंग्रेजों का अंधानुकरण कर रहा था। और दूसरा वह जो पहले से संख्या में कहीं अधिक विपन्न था और जिसके गले लिपट कर भारतीय संस्कृति अभी भी अंतिम श्वास ले रही थी। गांधीजी के दिव्य चक्षुओं ने यह सब होते देखा तो उनकी आत्मा चीख उठी। अब क्या था—संघर्ष की योजना बनायी गयी, जिसका आधार था सत्य और अहिंसा। गांधीजी जेल गये, वहां भी वे शिक्षा की योजना बनाते रहे। जेम्स रॉस का कहना है—"शिक्षा और दर्शन एक सिक्के के दो पहलू हैं।" कितनी सत्यता है इस बात में। दर्शन विचारात्मक है तो शिक्षा क्रियात्मक। शिक्षा में क्रिया का विशेष महत्व है। बिना क्रिया के स्थायी शिक्षा नहीं दी जा सकती। अतः सर्वप्रथम गांधीजी का शिक्षा दर्शन वही कहा जायगा, जिससे वे स्वयं प्रभावित हुए। शिक्षा वह है जो अपने प्रभाव से दूसरों को अपनी ओर झुका दे।

गांधीजी अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाने वाले प्रकाश-स्तम्भ थे। जिन्हें कोटि-कोटि भारत की जनता ने अपना अगुआ, मार्ग दर्शक, तथा शिक्षा संस्थापक, यही नहीं राष्ट्रपिता तक स्वीकार किया है।

समय समय पर पूर्व व पश्चिम में कई महान् शिक्षा-शास्त्री हुए हैं। उन्होंने अपने शिक्षा दर्शन से लोक-शिक्षण किया है। पश्चिम में आज भी भगवान ईसा के सदुपदेशों पर पश्चिमी समाज जीवित है। पूर्व में भी हम गांधी जी को वही स्थान देंगे जो पश्चिम में ईसा का है।

संसार में होने वाले सभी शिक्षा-शास्त्रियों का यदि ध्यान पूर्वक अध्ययन किया जाए तो सबके मूल में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक शिक्षा शास्त्री पहले दार्शनिक और बाद में शिक्षा शास्त्री होता है। गांधी जी ने भी जीवन के प्रत्येक पहलू का अध्ययन करने के पश्चात् देश की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थितियों एवं तत्कालिक शिक्षा (जिसका उद्देश्य केवल क्लर्क पैदा करना था) का भली भांति अनुभव कर लिया था। उन्होंने देखा यह शिक्षा प्रणाली भारतीयों को जबरन पश्चिमी संस्कृति की ओर घसीटे ले जाना चाहती है। ऐसी शिक्षा का गांधी जी ने विरोध किया और एक कुशल नाविक की भांति, तूफान में फंसी भारतवासियों की नैया को एक दिशा दी, एक किनारा दिया और वह है 'बुनियादी शिक्षा'।

हेनरीफोर्ड के शब्दों में— 'सच्ची शिक्षा का अभिप्राय है स्वयं करके कुछ करना सीखना, स्वयं सहायता करके सहायता करना सीखना तथा स्वयं कमा कर कमाना सीखना है।'

गांधी जी की सच्ची शिक्षा को यदि उपर्युक्त वाक्य में समायोजित किया जाए तो हमें श्रम व ज्ञान का सम्मिश्रण दिखाई देगा जिसका लक्ष्य है उत्पादकता और जो सहयोग, सद्भाव एवं सर्वोदय की भावना से ओत-प्रोत है। बुनियादी शिक्षा संजीवनी बूटी की भांति है जो अज्ञान के मूल को समाप्त कर ज्ञान का संचार करती है।

भारतीय शिक्षा की समस्याओं को हल करने के लिए गांधी जी ने एक नूतन दृष्टिकोण अपनाया। तत्कालीन शिक्षा में उन्होंने अनेक दोष पाए, और उसे अराष्ट्रीय बताकर उसकी कड़ी आलोचना की। गांधी जी स्वयं लिखते हैं— "मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि शिक्षा की वर्तमान प्रणाली दोषपूर्ण ही नहीं, हानिकारक भी है। अधिकांश बालक अपने माता-पिता तथा पैतृक व्यवसाय का त्याग कर देते हैं। नगरवासियों के समान वे बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। वे जो कुछ सीखते हैं, उसे शिक्षा के अतिरिक्त कुछ भी कह सकते हैं।"

गांधी जी ने एक स्थान पर शिक्षा के अव्यवहारिक एवं अभारतीय होने की बात कही है। उन्ही के शब्दों में–"वर्तमान शिक्षा प्रणाली किसी प्रकार से भी देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती है। सब प्रकार की उच्च कोटि की शिक्षा में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने से शिक्षित तथा असंख्य अशिक्षितों के मध्य एक बड़ी दीवार खड़ी हो गयी है।"

अतः गांधीजी ने तत्कालीन शिक्षा में पाए जाने वाले दोषों को दूर करने के लिए शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन करने पर बल दिया। सन् 1938

मे देश के शिक्षा-शास्त्रियों का एक सम्मेलन वर्धा मे–मारवाड़ी स्कूल की रजत जयन्ति के अवसर पर आयोजित किया गया। गांधीजी स्वयं इसके सभापति थे, और वहां उन्होंने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचार रखे। ये विचार इसके पूर्व उन्होंने 'हरिजन' नामक पत्र में अपने लेखों के माध्यम से प्रकाशित कर दिए थे।

कुछ आलोचक यह भी कहते हैं कि बुनियादी शिक्षा मे गांधीजी के अपने विचार कुछ नही हैं। उसमें तो रूसो, पेस्टालॉजी, फ्रोबेअल आदि के विचार हैं। हो सकता है मेरे और आपके विचार एक से हों लेकिन इसका अभिप्राय यह तो नही कि आपको मेरा समर्थक मान लिया जाय। ठीक इसी प्रकार गांधीजी के विचार उनके स्वय के थे जो देश व उसकी परिस्थिति से उद्भूत थे।

वर्धा मे गांधीजी के विचारों पर काफी बहस होने के बाद उसे 'बुनियादी शिक्षा' का रूप दिया गया। गांधीजी की शिक्षा का क्रम जीवन के प्रत्येक पहलू को छूता है। उनकी यह मान्यता थी कि बालक गर्भावस्था से लेकर मृत्यु-पर्यन्त सीखता है।

प्रयत्न तो सभी करते हैं किन्तु सफलता विरले ही व्यक्ति को मिलती है। गांधीजी के पूर्व भी कई व्यक्तियो ने प्रयत्न किये, लेकिन मैं तो उन्हे केवल मात्र आकाश-मंडल में उड़ने वाले राकेट की धूम्र-पुच्छ कहूँगा जो एक क्षणिक रेखा बन कर अन्तर्धान हो जाती है। लेकिन गांधीजी द्वारा प्रदत्त बुनियादी शिक्षा तो हमारे देश की बुनियाद है। भवन अपनी नींव पर ही खड़ा होता है। भले ही व्यक्ति अपनी उच्चशिक्षा के अंधेपन में अपनी बुनियादी शिक्षा जिसे हम प्रारम्भिक शिक्षा भी कह सकते हैं, भुला दे पर यह उसका पागलपन होगा। एक भवन के कंगूरे की सुन्दरता व आकर्षण का सारा श्रेय नींव की ईंट को है जिस पर भवन का भार है। नींव की ईंट यदि डगमगा जाय तो गगनचुम्बी अट्टालिका धराशायी हो सकती है। वही बात हमारी बुनियादी शिक्षा के बारे में भी सत्य है।

लोग यह भी कहते हैं कि तकली चलाने से क्या बालक आगे जाकर अपना पेट भर लेगा ? पूरे वर्ष मे तकली के दस तार कात लिए तो वह कौनसा उत्पादक बन जायगा ? लेकिन यदि मस्तिष्क पर थोड़ा जोर देकर सोचा जाय तो हमें ज्ञात होगा—छोटे बालक के हाथ साधने के लिए तकली ही वह साधन है जो उन हाथों को महान् प्रशिक्षण देती है। वे ही छात्र जो आज स्वावलम्बन व उत्पादन की छोटी-छोटी क्रियाएं प्राथमिक विद्यालयों में

सकने में सक्षम हो जाते हैं ।

शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी द्वारा टाल्सटॉय आश्रम तथा फिनिक्स आश्रम में किए गए प्रयोग सराहनीय हैं। वहीं उन्होंने चर्मकारी, बागवानी तथा श्रम द्वारा शिक्षा देने का सफल प्रयोग किया। इन्हीं प्रयोगों के आधार पर गांधीजी ने देश को शिक्षण विधियां बतायीं।

गांधीजी की शिक्षा विधि की विशेषता है-किसी उद्योग, प्रकृति तथा सामाजिक वातावरण के साथ समवाय और उसी के माध्यम से ज्ञानांतर विषयों का ज्ञान देना। जितनी सरलता और व्यावहारिकता है इस बात में करके सीखने का सिद्धान्त यहां लागू होता है। इसे शिक्षण का आधार मान कर गांधीजी ने देश-वासियों को अपनी शिक्षा योजना दी।

आज इंग्लैंड में औद्योगिक-क्रांति का सूत्रधार 'ओवन' माना जाता है। उसने भी गरीबों के साथ होने वाले अन्याय का खुल कर मुकाबला किया। श्रमिकों के लिए कल्याणकारी कार्य किए। वह दीपक तो बुझ गया लेकिन लाखों दीपक जला गया। यही कारण है आज इंग्लैंड औद्योगिक क्षेत्र में अग्रणी देश है। ठीक इसी प्रकार शिक्षा जगत पर महात्मा गांधी की जो अमिट छाप है उसे कोई भी भारतीय अपने हृदय से नहीं मिटा सकता। विचारक तो कई आते हैं और चले जाते हैं लेकिन वही विचारक, विचार विधाता है जिसकी वाणी उसके मरने के बाद भी गुंजित होती रहे।

यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि बुनियादी शिक्षा गांधीजी द्वारा प्रतिपादित न होकर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा होती तो क्या भारतीय जनता इसे स्वीकार नहीं करती ? हां ! हो सकता है इसे तब इतना सम्मान न मिलता किन्तु अन्ततोगत्वा इसकी अच्छाइयों को देखते हुए अवश्य यह कुछ समय बाद ख्याति प्राप्त करती। गांधीजी द्वारा प्रतिपादित होने के कारण इसे जल्दी ही ख्याति प्राप्त हो गयी। लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं है कि जिस रूप में महात्मा गांधी ने इसे प्रस्तुत किया उसी रूप में इसे स्वीकार कर लिया गया हो। ऐसी बात नहीं है। गांधीजी स्वयं अपनी योजना के कम आलोचक नहीं थे। उन्होंने राष्ट्र को चेतावनी दी थी कि जो कुछ मैं कहूं उसे हूबहू सत्य न मान लिया करो, प्रयोग करो, अनुभव करो और यदि वह कसौटी पर खरा उतरे तो उसे स्वीकार करो अन्यथा उसे राष्ट्रहित के लिए तिलांजली दे दो। वे स्वयं भी पहले प्रयोग करते, अनुभव करते और बाद में होंठ खोलते थे।

गांधीजी का उद्देश्य था कि—हाथ प्रशिक्षण प्राप्त कर अपने भावी जीवन के लिए व्यवसाय की तैयारी करलें। अतः प्रारम्भ से ही सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दिया जाय। उनका विश्वास था कि तकली की शिक्षा तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा की ओर रुचि जागृत करती है।

तकली और चरखा ही बुनियादी शिक्षा का आधार नहीं है। कई उद्योग इसमें सम्मिलित किए गए हैं। जो ज्ञानार्जन के उत्तम साधन हैं। यदि थोड़े समय के लिए हम मानलें कि इस वैज्ञानिक युग में तकली महत्वपूर्ण नहीं है तो क्या हम एकाएक इस नयी पौध को एकदम बड़ी-बड़ी मशीनों से परिचित करावें। ऐसा कभी भी सम्भव नहीं हो सकता। शिक्षा का मूल सिद्धान्त है—

"साधारण से जटिल की ओर"।

विदेशों में मानव को यंत्रवत समझा जाता है पर हम ऐसा नहीं कर सकते। एक छः वर्षीय बालक को तकली देकर ही तकनीकी शिक्षा की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है। सूत कतवा कर, कपड़ा बुनवा कर मानवता के बड़े-बड़े गुणों का पाठ भी पढ़ाया जाता है।

इस शिक्षा के माध्यम से ही गरीब-अमीर, शहरी-ग्रामीण, स्त्री-पुरुष काले-गोरे, उच्च तथा निम्न वर्ग के समन्वय की ओर ध्यान देते हुए, वसुधैव कुटुम्बकम् तथा सर्वोदय की भावना से ओत-प्रोत जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली शिक्षा प्रणाली देश को देकर गांधीजी ने देश वासियों का बड़ा उपकार किया है, देशवासी गांधी शताब्दी के रूप में आज भी उनके प्रति आभार प्रकट कर रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे।

गांधीजी और शिक्षा का उद्देश्य

—परशुराम 'पारस'

यदि हमें सही अर्थों में स्वराज्य की स्थापना करनी है, तो यह आवश्यक है कि शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया जावे। बिना शिक्षा सब प्रयत्न बेकार है, मानव पंगु है, जीवन शून्य है। इस प्रकार जब व्यक्ति ही अपूर्ण होगा तो समाज में भी क्या सत्व रह जायेगा? ऐसी दशा में सच्चे स्वराज्य की कल्पना सिर्फ मरीचिका है, इसके अलावा कुछ नहीं। अतः स्वराज्य के लिए शिक्षा आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। शिक्षा मानव को प्रकाश देती है, उसके शारीरिक व मानसिक तन्तुओं को विकसित करती है।

अब प्रश्न यह उठता है, कि शिक्षा क्या है? साधारणतया शिक्षा की व्याख्या अक्षर-ज्ञान के आधार पर की जाती है। परन्तु गांधीजी की दृष्टि में अक्षर-ज्ञान एक साधन मात्र है। सही शिक्षा वह है जिससे मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक एवम् आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करता है। उनके कथनानुसार मनुष्य न तो कोरी बुद्धि है, न स्थूल शरीर है और न केवल हृदय या आत्मा ही है। सम्पूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिये तीनों के उचित और एक रस मेल की आवश्यकता होती है, और यही शिक्षा की सच्ची व्यवस्था है।

अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिये मानव के पास एक कला है, और उस कला का नाम है, भाषा। शिक्षा का माध्यम क्या हो अथवा कौन-सी भाषा के माध्यम से लोगों को शिक्षित किया जाय यह निश्चित करना

पहला काम है। शिक्षा के माध्यम का विचार किये बिना शिक्षा देते रहने का नतीजा बिना नीव के इमारत खड़ी करने की कोशिश जैसा होगा। शिक्षा के माध्यम के बारे में महात्माजी ने कहा है, कि मातृभाषा ही सर्वोत्तम है। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर बताया है, कि हम जो ज्ञान विदेशी भाषा द्वारा १६ वर्षों में ग्रहण करते हैं वही ज्ञान मातृभाषा द्वारा अधिक से अधिक १० वर्षों में प्राप्त कर सकते हैं। हमें अपनी भाषा को ही प्रमुख स्थान देना चाहिये। बड़े-बड़े मनीषियों ने भी इस सिद्धान्त को अपनाया है। महात्मा मुंशीरामजी जब भी भाषण देते, हिन्दी का ही प्रयोग करते। उनकी लावण्य-युक्त भाषा को सुन कर बच्चे, बूढ़े और स्त्रियां सभी मन्त्रमुग्ध रह जाते थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषा सिर्फ अंग्रेजों के लिये ही सुरक्षित रख छोडी थी। विदेशी भाषा हमें अपने धर्म, साहित्य व संस्कृति से अलग कर देती है। हमें अपनी ही भाषा में श्रद्धा रखनी चाहिये।

शिक्षा में सदाचार का स्थान पहला होना चाहिये। शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय और मानव मात्र के प्रति शुद्ध प्रेम की भावना शिक्षार्थी की नस-नस में समा जाय। स्वयं गांधीजी का सारा जीवन और जीवन जीने का उनका तत्व ज्ञान सदाचार की बुनियाद पर खड़ा था। सत्य, अहिंसा, संयम, सेवा, त्याग और बलिदान के वे पूर्ण रूपेण कायल थे। बापू ने एक जगह लिखा है – आचरण-हीन ज्ञान सुगन्ध में लपेटे हुए मुर्दे के समान है। सदाचार कल्याण का मार्ग है। इससे चरित्र का निर्माण होता है। वास्तव में मनुष्य की महत्ता उसके उत्तम चरित्र में निहित है। चरित्रवान् व्यक्ति का जीवन सुखी और शान्तिमय होता है वह हर असम्भव कार्य को सम्भव कर सकता है। बाल ब्रह्मचारी भीष्म ने तो मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करली थी।

शिक्षा में स्वच्छता का भी अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। गांधीजी ने माना था कि स्वच्छता की शिक्षा सारे राष्ट्र को, छोटे-बड़े सभी को, राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में दी जाय। मनुष्य मात्र के भौतिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये स्वच्छता आवश्यक है। पश्चिमी देशों में स्वच्छता को बडा ही महत्व दिया जाता है, हमे भी उनसे यह सीखना चाहिये। हमें अपना मकान, शाला व शहर सभी स्वच्छ रखने चाहियें, इनकी सफाई के बिना हमारा शरीर स्वच्छ रहना असम्भव है। सफाई की तरफ लापरवाही बरतने से हमारी तन्दुरुस्ती बिगड़ती है और रोग फैलते हैं। जिस जगह शरीर-सफाई, घर-सफाई और ग्राम-सफाई होगी वहा रोग कम से कम होंगे। सफाई के लिये कार्य करना हमारा धर्म है। हमे उससे प्रेम करना चाहिये।

शारीरिक स्वच्छता से भी अधिक आवश्यकता आत्मा की स्वच्छता की है। इस स्वच्छता की शिक्षा हमें धर्म से मिलती है। व्यक्ति, समाज और देश को उसकी आवश्यकता है। धर्म के बिना व्यक्ति का चरित्र नहीं बन सकता। धर्म एक जीवन-पद्धति है। धर्म रहित जीवन सिद्धान्त-रहित जीवन है। सिद्धान्त रहित जीवन पतवार-रहित नौका के समान है। धर्म बताता है, कि दुनिया में मनुष्य का सच्चा लक्ष्य क्या है। और उसका जन्म किसलिए हुआ है। अतः यह परमआवश्यक है कि शिक्षा में धर्म को स्थान दिया जाये।

आज का विद्यार्थी समाज बी० ए० अथवा एम० ए० की शिक्षा प्राप्त कर सरकारी नौकरियों के लिए दफ्तरों में चप्पलें चटखाते फिरता है। 'नो वैकेन्सी' का बोर्ड पढ़ते-पढ़ते उसका दिमाग भन्ना जाता है, आखिर ऐसा क्यों होता है ? इसका प्रमुख कारण शिक्षा की दोषपूर्ण प्रणाली है, जिसमें श्रम को महत्व नहीं दिया जाता। ऐसी शिक्षा छात्र को सिर्फ किताबी कीड़ा बना कर छोड़ देती है। शिक्षा में श्रम का स्थान न होने से छात्र श्रम को हीन समझने लगते हैं। उससे घृणा करने लगते हैं। इसलिये युवकों को बचपन से ही श्रम की पूजा करना सिखाना चाहिये। अतः शिक्षा में हाथ के काम अथवा दस्तकारी के कार्य को अनिवार्य रूप से स्थान देना चाहिये। इस विषय में बापू ने कहा है—' बच्चे की शिक्षा का प्रारम्भ मैं किसी दस्तकारी की तालीम से ही करूंगा, और उसी क्षण से उसे कुछ निर्माण करना सिखा दूंगा। इस प्रकार हर एक शाला स्वावलम्बी हो जायेगी।''

मनुष्य का पहला सुख शरीर का स्वस्थ होना है। शिक्षा प्रणाली में शरीर को स्वस्थ रखने के लिये कुछ क्रियाओं को विशेष स्थान मिलना चाहिये। इस प्रकार की क्रियाओं में खेल-कूद को स्थान दिया जाय। फुटबॉल, क्रिकेट, टेनिस आदि विदेशी खेल हैं तथा गेन्द बल्ला, खो-खो, कबड्डी आदि देशी। इनसे शरीर को व्यायाम मिलता है। खेल खेलने से शरीर का प्रत्येक अंग स्फूर्तियुक्त हो जाता है। मांस पेशियां दृढ़ हो जाती हैं और शरीर मजबूत बन जाता है। बलिष्ठ पुरुष देश की प्रगति में सहायक होते हैं। स्वयं शाला की स्थिति भी स्वास्थ्यप्रद स्थान पर होनी चाहिये। जहां शुद्ध जल, प्रकाश और वायु प्रचुर मात्रा में मिल सके। शरीर के लिये शुद्ध वायु का होना नितान्त आवश्यक है। बापूजी ने कहा है—सौ दवा और एक हवा।

शारीरिक-शिक्षा, नैतिक-शिक्षा और सैनिक-शिक्षा के द्वारा छात्रों में अनुशासन की प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिये। बालकों में अनुशासन युक्त जीवन बिताने के लिये शालाओं में वातावरण उपस्थित करना चाहिये। छात्रों को हर समय कार्य में रत रखना चाहिये जिससे उन्हें दूसरी तरफ जाने का मौका

भी न मिले। अनुशासन से मस्तिष्क का विकास होता है। अनुशासन पूर्वक कार्य करने वाला बच्चा अपने भावी जीवन में सदाचारी, कर्मठ, होनहार, कर्तव्यशील, मधुरभाषी और नियमपालक नागरिक बन सकता है। वह अपने राष्ट्र को उन्नतिशील बनाने में अपना विशेष सहयोग प्रदान करता है।

जहां तक स्त्री शिक्षा का सवाल है, स्त्री और पुरुष समाजरूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। यदि गाड़ी का एक पहिया कमजोर रह कर टूट जाये तो गाड़ी की दशा चिन्ताजनक हो जायेगी। अत. हमें दोनो को बल देना है। पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी शिक्षित करना है। पुरुष यदि यह समझने लगे कि स्त्री पढ़ लिख कर उसके अधिकार छीन लेगी तो यह उसका निरी भूल है। नारी की प्रगति पर ही राष्ट्र व उसके साहित्य, संस्कृति का मूल्य आंका जाता है। आज नारी जागृति का बड़ा ही महत्व है, और नारी को जागृत करने के लिये उसे शिक्षित करना परम आवश्यक है। स्त्री शिक्षा के विषय में महात्मा गांधी ने बताया है कि "मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूँ।" उन्हें गृह-व्यवस्था की, गर्भ काल के सार सभाल की, बालकों के लालन पालन की साहित्य संगीत, ललित कला आदि की शिक्षा दी जानी चाहिये।

शिक्षा के सम्बन्ध में गांधीजीके उपरोक्त विचार वास्तव मे अमूल्य हैं और यही शिक्षा की सच्ची व्यवस्था है। ऐसी शिक्षा से हमारा शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास सम्भव है।

गांधीजी और शिक्षा-दर्शन

—करणीदान बारहठ

भारत अपने में अनूठा है इसीलिए गांधीजी अपने में अनूठे थे। गांधीजी भारत से जुड़े हुए रहे इसलिए भारत ने उन्हें अपनाया, उभारा और इतना ऊंचा स्थान दिया कि वे अपने समय में ही विश्व के महान् मानव बन गए। सभी विचारधाराएं समय के साथ बासी हो जाती हैं, किन्तु गांधीजी के विचारों में अब भी ताजगी है। उनकी भावनाओं में भारत की आत्मा बोलती है इसलिए वे अब भी भारत को प्यारे हैं। महान् बनने की आकांक्षा वाले अब भी वहीं से बटोर कर कोई विचार का बीज लाते हैं, इस मिट्टी में उगाते हैं, उसको सींचते हैं, किन्तु वह या तो उगता नहीं और यदि उगता है तो पल्लवित नहीं होता और पल्लवित होने पर अभी तक कोई फलीभूत हुआ नहीं, भविष्य को कौन कहे ? इसलिए गांधी के बाद अब तक देश ने कोई महान् पुरुष नहीं दिया।

गांधीजी ने हर सिद्धांत पर प्रयोग किया तब उस पर अपना निर्णय लिया और फिर दावे के साथ कह दिया कि यही सिद्धांत उपयुक्त है। यही कारण था कि वे जन-मानस पर छाये रहे। गांधीजी का शिक्षा-दर्शन उनके अन्तिम दिनों की देन है इसलिए वह परिपक्व है। इस शिक्षा-दर्शन पर उनको गर्व था। उन्होंने कहा भी है—'मैंने आज तक हिन्दुस्तान को बहुत-सी चीजें दी हैं, उन सबमें शिक्षा की यह योजना और पद्धति सबसे बड़ी चीज है और मैं नहीं मानता कि इससे अधिक अच्छी चीज मैं देश को दे सकूंगा।'

बालक के सर्वांगीण विकास का नाम ही तो शिक्षा है। यह विचार-धारा तो पुरानी हो थी। गांधीजी के समय में शिक्षा का उद्देश्य था बालक पढ़ना लिखना जान जाएं और गणित के कुछ प्रश्न कर डालें बस। इसे उस समय 'क्लर्क-उत्पादन' की संज्ञा दी गई थी। गांधीजी ने इसके स्थान पर शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया- बालक का मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास, और इसे नया नाम दिया–बुनियादी शिक्षा।

गांधीजी का शिक्षा-दर्शन प्राथमिक शिक्षा से आगे नहीं बढ़ा। उन्होंने हृदय, हाथ और मस्तिष्क को एक सूत्र में जोड़ दिया। भारत के ही नहीं वरन् विश्व के शिक्षा-शास्त्री इस सिद्धांत से प्रभावित हुए। गांधीजी ने इस दर्शन पर अपने प्रयोग किए और अनेकों शंकाओं का जो उस समय उठ खड़ी हुई थी समाधान किया। गांधीजी स्वयं एक असाधारण पुरुष थे वे पहले शिक्षक थे और फिर कुछ और। उन्होंने शिक्षक होकर अपनी शिक्षा का प्रयोग किया, वे सफल हुए और इसीलिए उन्होंने इसकी सफलता का दावा किया। वे शिक्षा के माध्यम से ऐसा 'मानव' तैयार करना चाहते थे जिसका हृदय मानव-कल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत हो, जिसमें प्रेम, सहानुभूति ममता, सत्य और अहिंसा आदि मानवीय गुणों की अजस्त्र धारा प्रवाहित हो। प्रकृति-प्रदत्त बुद्धि का पूरा विकास हो सके। उसका शरीर निरोग रहे। इसके साथ उनका दृष्टिकोण यह भी था कि शिक्षा को पूरी कर शिक्षित व्यक्ति नौकरी की भीख मांगता न घूमे। दरअसल, समूचा गांधी-दर्शन भारतीय दर्शन की पृष्ठ-भूमि पर आधारित है। एक बात अब तक समझ से बाहर है कि एक व्यक्ति सोलह वर्ष की निरन्तर तपस्या के बाद अपनी रोटी के लिए दफ्तर दर-दफ्तर भीख मांगता घूमे, ऐसी शिक्षा को लानत है। पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति ने वस्तुतः भारतीय सामाजिक व्यवस्था की कमर तोड़ दी। एक खाती का लड़का है, अपने बाप के शिक्षणालय में पढ़ रहा है, उसे पानी का लोटा भी ला देता है, इसके काम में मदद भी करता है और उसका दिया हुआ पाठ भी याद कर लेता है। यह पुरानी व्यवस्था युगों से चली आ रही थी। इसके ऊपर मुगलों का साम्राज्य गुजरा, उसे कहीं ठेस भी नहीं लगी। 'बेकारी' शब्द किसी शब्द-कोश में भी नहीं मिलता था। किसान का लड़का किसान, सुनार का लड़का सुनार, चमार का लड़का चमार। आध्यात्मिक ज्ञान के लिए व्यवस्था अलग थी। युगों की गुलामी से इसे हानि अवश्य हुई, किन्तु यह टूट नहीं सकी। पाश्चात्य शिक्षा ने इसे एक झटके से तोड़ फेंका। गांधी का सपना इससे कुछ मिलता जुलता था।

स्वाधीनता के तुरन्त बाद इस दर्शन को लेकर योजनायें बनी। सभी राज्यों ने मन से या बेमन से इसे अपनाया भी, किन्तु परिणाम सबके सामने हैं। एक वर्ष का पूरा प्रशिक्षण प्राप्त करके शिक्षक शाला के प्रांगण में प्रवेश करता है, कक्षा में जाता है और शिक्षण प्रारम्भ करता है जैसे कि उसने एक वर्ष में कुछ भी प्राप्त नहीं किया है। उसके हाथ में वही डंडा है, छात्र का हाथ उसके सामने है और फिर 'सटाक्, सटाक्,' 'हराम जादे, पाठ याद नहीं किया।' बच्चे की आंखों के आंसुओं को देखकर तरस आता है, कमी कहां है? दरअसल, ऐसा लगता है कि जो कुछ हो रहा है बेमन से हो रहा है। प्रशिक्षक, शिक्षक, संयोजक अर्थात किसी के हृदय में इसके प्रति लेशमात्र भी आस्था नहीं, निष्ठा नहीं, लगन नहीं। सब कुछ थोपा हुआ-सा लगता है। मस्तक फिर अकेला पड़ गया, उसका सामंजस्य न तो हृदय से हुआ और न हाथ से। बात वहीं खड़ी है जहाँ आज से बीस वर्ष पूर्व थी। बेकारी विकट समस्या बन कर देश पर छाई हुई है, यही नहीं आज का नया खून बौखला गया है, अनुशासन की दीवारों को तोड़ चुका है और देश की सम्पत्ति को नष्ट-भ्रष्ट करने पर उतारु हो गया है। सभी शिक्षा-योजनाएं असफल रही हैं। भारत में शिक्षितों की संख्या अभी तक तो नगण्य है। फिर भी स्थिति बिगड़ चुकी है।

वास्तव में इस योजना को क्रियान्वित करते समय एक भूल हुई है। उद्योग का सामंजस्य ज्ञान से हो, यह प्राथमिक स्तर पर व्यावहारिक नहीं है। इसे माध्यमिक स्तर के साथ जोड़ना चाहिए था। मुदालियर-आयोग के सुझाव के अनुसार इसे एक कालांश दिया गया था किन्तु उसका परिणाम शून्य ही रहा। दर्जी-मास्टरजी स्वयं कच्छा सीना ही जानते हैं। खाती-मास्टरजी रंदा लगाना ही सीख कर आए हैं। बाग-मास्टरजी को केवल पेड़ों में पानी लगाने का ही ज्ञान है। फिर माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर छात्र नौकरी ही तो ढूंढेगा। कोठारी--आयोग ने इसे कार्यानुभव का नया नाम दिया है। इसे पाठ्यक्रम से अलग रखकर महत्वहीन कर दिया है। एक दो वर्ष में इस पर भी भाषणबाजी हो जायेगी।

भारतीय शिक्षा इस समय समस्याओं से घिर गई है। शिक्षितों के आंकड़े देकर भी हम सन्तोष प्राप्त नहीं कर सके। इस क्षेत्र में हम पहले से अधिक उलझ गए हैं। कुछ महत्वाकांक्षाएं थीं और उन्हें प्राप्त करने के लिए थीं योजनाएँ। हम योजनाओं को लेकर भी चले। किन्तु उपलब्धियों से निराशा ही हाथ लगी। शिक्षा के उद्देश्यों में अब हम भी कोई परिवर्तन करना नहीं चाहेंगे। बालक का आत्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक विकास ही हमारा उद्देश्य होगा, किन्तु जो कुछ वातावरण इस समय बन रहा है, उसमें केवल शिक्षा की

योजनाएं ही दोषी नही है, इसके मूल मे ढूंढ़ने पर बहुत कुछ मिलेगा जिससे आज के युवकों में कुण्ठायें, नैराश्य, अनुशासनहीनता, आक्रोश एवं प्रतिशोध की भावनाएं जन्म ले रही हैं। अतः भावी योजनाएं बनाते समय शिक्षा के उद्देश्य में 'रोटी' का प्रश्न अवश्य जोड़ना होगा। 'रोटी' की समस्या के समाधान से कई समस्याएं स्वतः हल हो जाती है। देश में व्यापक रूप से फैल रही आर्थिक विषमता, सामाजिक विकृतियाँ, भ्रष्टाचार, पक्षपात तथा असन्तोष को जन्म दे रही हैं। पड़ोस में कुत्ते हलवा खाते हों तो सूखी रोटी से सन्तोष नही होता। सभी एक पंक्ति मे बैठकर चने चबाकर हंसते-हंसते पानी पी लेते हैं। इन सभी समस्याओं का समाधान आज भी गांधीजी का शिक्षा-दर्शन कर सकता है। पश्चिमी शिक्षा-प्रणालियों के क्रियान्वयन पर चाहे करोड़ों का व्यय कर दीजिए, भारत की मिट्टी का पौधा ही भारत की जलवायु मे फलीभूत होगा। हम तो गाधी तक ही भारतीय थे, अब तो विदेशी होते जा रहे हैं। हमें उनकी नकल मे ही मजा आता है। गाधीजी की दृष्टि में स्वावलम्बन ही शिक्षा की सच्ची कसौटी है, उन्होंने चरित्र-निर्माण पर बल दिया था। वे सामाजिक विषमता नही चाहते थे। उद्योग-केन्द्रित शिक्षा भी उनका एक ध्येय था। वे शिक्षा का माध्यम मातृभाषा मानते थे। वे अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा चाहते थे। अब हम देखें कि दोष उनके दर्शन का है या उस पर योजना बनाने वालों अथवा योजना को क्रियान्वित करने वालों का।

अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त है कि समस्याएं स्वयं समाधान ढूंढ़ती हैं और ढूंढ़ने वालो को गाधीजी के शिक्षा-दर्शन मे अब भी बहुत कुछ मिल सकता है।

सम्पर्क सूत्र

1—श्री जमनालाल शास्त्री, राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्दे
केन्द्र, बीकानेर

2—श्री धर्मचंद शर्मा, राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन केंद्र
बीकानेर

3—श्री बजरंगसहाय शास्त्री, राजकीय सेकेण्डरी स्कूल, टोडाभीम
(सवाई माधोपुर)

4—श्रीहोतीलाल शर्मा, 'पौर्णेय' रा० उ० मा० वि०, त्रिवेणी (अलवर)

5—श्री रामेश्वरप्रसाद शर्मा, रा० उ० मा० वि० वजीरपुर (स० मा०)

6—शिवचरण मेनारिया, फतेह मा० वि०, उदयपुर

7—श्री भगवानवल्लभ जोशी, फतेह मा० वि०, उदयपुर

8—श्री विश्वेश्वर शर्मा, श्रीकृष्ण निकुंज, भट्टियानी चौहट्टा, उदयपुर

9—श्री राजशेखर व्यास, राज० उ० मा० वि०, देलवाडा (उदयपुर)

10—श्रीमती शशिबाला शर्मा, राजकीय कन्या शाला डूंगरपुर, (उदयपुर)

11—श्री राधाकृष्ण शास्त्री, रा० मा० वि० खाचरियावास, (सीकर)

12—श्री श्याम श्रोत्रिय, जौहरी उ० मा० वि०, लाडनू (नागौर)

13—श्री बी. एल. जोशी, राज० उ० मा० वि० डूंगला (चित्तौड़गढ़)

14—डा. शिवकुमार शर्मा, उपनिदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर

15—श्री भगवतीलाल व्यास, विद्याभवन स्कूल, उदयपुर

16—श्री ज्ञान मारिल्ल शिक्षा विभाग राजस्थान बीकानेर

17—श्री जगन्नाथ शर्मा 'शास्त्री' वरिष्ठ-अध्यापक राजकीय उच्च० माध्यमिक
विद्यालय, बाड़मेर (राजस्थान)

18—श्री. विजयसिंह लोढ़ा, रा० व० उ० मा० वि०, प्रतापगढ़ (चित्तौड़)

19—श्री परशुराम 'पारस', रा० प्रा० वि० भीनासर (बीकानेर)

20—श्री करणीदान बारहठ, मानरामपुरा, सांगरिया (श्रीगंगानगर)